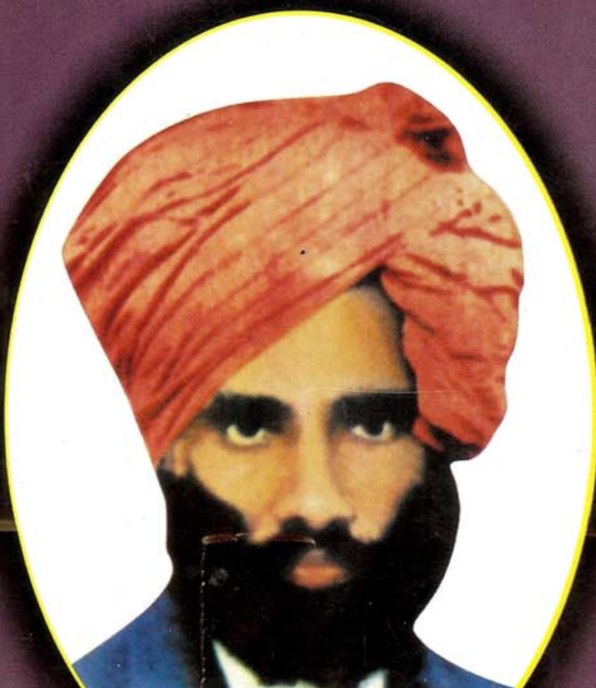
स्वतंत्रता सेनानी, पत्रकार, साहित्यकार

विजय सिंह पथिक

राजकुमार भाटी



उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

स्वतंत्रता सेनानी, पत्रकार, साहित्यकार

विजय सिंह पथिक

राजकुमार भाटी

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
(स्मृति संरक्षण योजना)
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
6, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ।

प्रकाशक :
मनीष शुक्ल
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

स्मृति संरक्षण योजना के अन्तर्गत प्रकाशित

ग्रंथमाला संख्या : 27

प्रथम संस्करण : 2016

ISBN - 978-93-82175-74-2

प्रतियाँ : 1100

मूल्य : रु0 77.00 (सत्तहत्तर रुपये मात्र)

मुद्रक :
अवध पब्लिशिंग हाउस
पानदरीबा, लखनऊ।

प्रकाशकीय

दृढ़ संकल्प और सरोकारों के लिए अटूट समर्पण से क्या कुछ सम्भव नहीं है, स्वर्गीय विजय सिंह 'पथिक' जी का जीवन इसकी जीती जागती मिसाल है। होश संभालते ही उन्होंने देश सेवा और जनजागरण का जो वृत लिया, वह आखिरी सांस तक अवरिम जारी रहा। भूपसिंह राठी के रूप में उनका क्रांतिकारी व्यक्तित्व रहा हो या विजय सिंह 'पथिक' के रूप में आंदोलनकारी और साहित्य व पत्रकारिता से जुड़ी पहचान, सभी असाधारण उंचाइंयों को छूते हैं। विजौलिया किसान आंदोलन से वह राष्ट्रीय स्तर पर पहली बार चर्चित हुए थे। इसके लिए गांधी जी तक ने उनकी प्रशंसा की थी। अंग्रेजों के ही नहीं, देसी रियासतों के शोषण को भी इस तरह उन्होंने पहली बार देश के सामने रखा। समाज सुधार, स्त्री शिक्षा, स्वावलम्बन, नशाबन्दी, खादी प्रोत्साहन और जाति भेद मिटाने के लिए भी आजीवन समर्पित रहे। इन सामाजिक कार्यों के व्यवस्थित संचालन के लिए उन्होंने राजस्थान सेवा संघ का गठन किया था, अपनी उपलब्धियों को लेकर जिसकी तुलना प्रायः गांधी जी के साबरमती आश्रम से की जाती है।

इसी तरह, साहिय और पत्रकार के रूप में भी उनकी उपलब्धियां असाधारण थीं। साहित्यकार के रूप में उन्होंने गीत, लेख, संस्मरण और अन्य विधाओं का भरपूर उपयोग किया। 'प्रहलाद विजय' महाकाव्य उनकी इस प्रतिभा को अत्यंत स्पष्टता से हम सभी के सामने रखता है। पत्रकार के रूप में उन्होंने लगभग आधा दर्जन समाचार पत्र निकालें। आजादी और समाज सुधार के प्रति उनकी जिजीविषा का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि साप्ताहिक 'नवीन राजस्थान' के मुख्य पृष्ठ पर वह हमेशा यह पंक्तियां लिखा करते थे –'यश वैभव सुख की चाह नहीं, परवाह नहीं जीवन रहे न रहे / यदि इच्छा है तो यह है, जगमें स्वेच्छाचार, दमन न रहे।

श्री राजकुमार भाटी ने स्वर्गीय विजय सिंह 'पथिक' जी के प्रेरक व्यक्तिव को इस पुस्तक 'विजय सिंह पथिक' में अत्यन्त परिश्रम के साथ व्यवस्थित ढंग से संजोया है। समूची पुस्तक लगभग एक दर्जन अध्यायों में

विभक्त है। यह हैं........सामान्य परिचय, पथिक जी का क्रांतिकारी जीवन, आंदोलनकारी पथिक जी, पथिक जी का राजनीतिक व्यक्तित्व, पत्रकार के रूप में पथिक जी, साहित्यकार पथिक जी, विजौलिया आंदोलन, 'प्रहलाद विजय' और पथिक जी, पथिक जी के साहित्य में प्रगतिशीलता, पथिक जी के संस्मरण व पत्नी जानकी देवी के संस्मरण आदि। पुस्तक के अन्त में पथिक जी के कुछ चुनिंदा गीत भी संकलित हैं। इनमें वह चर्चित झण्डा गीत 'प्राण मित्रों भले ही गंवाना, पर न ये झण्डा नीचे झुकाना' भी शामिल है, जो 26 जनवरी, 1930 में पहली बार कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर गाया गया था। यह वही अवसर था, जिसकी स्मृति चिरस्थायी रखने के लिए बाद में इसी दिन स्वतंत्र भारत का संविधान लागू हुआ।

पुस्तक के अन्त में पथिक जी के बारे में संकलित विभिन्न विद्वानों के विचार यह दर्शाने के लिए काफी हैं कि उनका चिंतन–मनन और जनजागरण के लिए सक्रियता किन उंचाइयों को छूती रही थी। उदाहरण के लिए उनके जीवनी लेखक शंकर सहाय सक्सेना ने लिखा है कि पथिक जी वास्तव में एक महान साहित्यकार, लेखक, कवि इतिहास शोधक और राजनीतिज्ञ थे। राजनीतिक संघर्ष ने उनके गम्भीर पाण्डित्य, साहित्यकार और कवि, को छिपा रखा था। भारत में बहुत कम राजनीतिक नेता उनकी पंक्ति में रखे जा सकते हैं, जो इतनी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हों। यह विचार पथिक जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर सारगर्भित टिप्पणी सरीखे हैं। श्री राजकुमार भाटी ने पथिक जी जैसी महान विभूति के जीवन वृतांत को जिस तरह सरल शब्दों में संजोया है, व्यवस्थित रूप दिया है, इसके लिए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान आभार व्यक्त करते हुए गौरवान्वित है। आशा है कि संस्थान की स्मृति संरक्षण योजना के अन्तर्गत इस पुस्तक 'विजय सिंह पथिक' को समाज के सभी पाठक वर्गों, शोध छात्रों और विद्यार्थियों आदि के बीच सराहना मिलेगी और वे मानवीय मूल्यों के लिए समर्पित पथिक जी के प्रेरणाप्रद जीवन को आत्मसात करने का प्रयास करेंगे।

मनीष शुक्ल
निदेशक

निवेदन

समाज विकास की वर्तमान उंचाइयां शायद ही संभव होतीं, यदि इनकी नींव में अनेकानेक प्रतिभाओं का असाधारण योगदान न रहा होता। सच तो यह है कि ऐसी प्रतिभाओं की योग्यता और समर्पण के चलते ही हमारा समाज आज की उंचाइयों को छू सका है। ऐसी योग्यता यदि विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ी हो, तो सहज ही उसकी असाधारण प्रतिभा सम्पन्नता का अनुमान लगाया जा सकता है। स्वर्गीय विजय सिंह 'पथिक' आजादी के संघर्ष की एक ऐसी ही महान प्रतिभा थे,उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में जनता के जनजागरण के लिए असाधारण कार्य किया था।

उनकी पहचान आज महान क्रांतिकारी, आंदोलनकारी, संगठनकर्ता, समाज सुधारक, साहित्यकार और पत्रकार के रूप में होती है। वह अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने इन सभी क्षेत्रों में इतना कुछ किया कि सहसा विश्वास नहीं होता कि कोई प्रतिभा कैसे एक साथ विभिन्न क्षेत्रों में इतनी उंचाइयां छू सकती है। क्रांतिकारी रहे तो रास बिहारी बोस/शचीन्द्र नाथ सान्याल जैसे क्रातिकारियों को प्रभावित किया और अहिंसक आंदोलनकारी बने तो गांधी जी भी उनके प्रशंसक थे। सच तो यह है कि उन्होंने अपने जीवन के एक–एक पल का सदुपयोग देश की आजादी और समाज निर्माण के लिए किया था। इसके चलते जब कभी जेल में रहें, तो भी साहित्य और लेखन की विभिन्न विधाओं में भरपूर सृजन किया। कहानी, कविता और आलोचना व संस्मरण आदि के क्षेत्र में उनका कृतित्व देखते–पढ़ते ही बनता है। उन्होंने अपनी राजनीतिक गतिविधियों के बीच पत्रकारिता का भी सदुपयोग किया था। उन्होंने कई समाचार पत्रों का सम्पादन कर जनजागरण के अनेक कार्यों को आगे बढ़ाया था। इनमें स्त्री जागरूकता, मद्य निषेध, खादी उपयोग, शिक्षा और पिछड़ों/दलितों आदि के कल्याण के अनेक प्रयास शामिल थे। इस तरह समाज विकास के हर क्षेत्र में विजय सिंह 'पथिक' की उपलब्धियां असाधारण थीं।

पथिक जी सबसे अधिक चर्चा में बिजौलियां किसान आंदोलन से आये। इस आंदोलन का महत्व इसी से आंका जा सकता है कि यह अहिंसक आंदोलन गांधी जी के चम्पारन आंदोलन से भी दो वर्ष पूर्व 1917 में शुरू हुआ

था। बिजौलिया मेवाड़ में एक ऐंसी रियासत थी, जहां जनता का दमन इस हद तक बढ़ चुका था कि उससे लगभग 80 तरह के कर वसूले जा रहे थे। पथिक जी ने न केवल किसानों को संगठित करके उन्हें न्याय दिलाया बल्कि पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर देसी रजवाड़ों के अकथनीय शोषण को भी चर्चा में लाने में सफल रहे। इस पुनीत कार्य में गणेश शंकर विद्यार्थी जी के समाचार पत्र 'प्रताप' का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण था, जिन्हें बिजौलिया के किसानों ने राखी भेजी थी और इसके चलते उन्होंने आंदोलन की खबरों को प्रमुखता के साथ प्रकाशित कर उसे देशव्यापी चर्चा दिलायी थी।

(स्वर्गीयविजय सिंह 'पथिक' जी के इस महान क्रांतिकारी, आंदोलनकारी, संगनकर्ता, साहित्यकार व पत्रकार व्यक्तित्व पर केन्द्रित यह पुस्तक 'विजय सिंह 'पथिक' निश्चय ही एक सराहनीय प्रयास है। विद्वान लेखक श्री राजकुमार भाटी ने इसमें अत्यंत परिश्रम से उनके प्रेरक व्यक्तित्व से सम्बन्धित सामग्री का संकलन किया है, उसे व्यवस्थित रूप दिया है। इस पुस्तक में स्वर्गीय विजय सिंह 'पथिक' के संस्मरणों को भी संजोया गया है, जो वह जीवन के अंतिम वर्षों में लिख रहे थे और अधूरे रह गये हैं। इनमें उन्होंने अपनी मां द्वारा सुनाये गये 1857 के पहले स्वतंत्रता संग्राम के मार्मिक और अत्यन्त बहादुरी भरे संस्मरणों को जिस प्रवाहपूर्ण ढंग से शब्द दिये हैं, वह पढ़ते ही बनते हैं।

इनसे पता चलता है कि किस तरह आम ग्रामीण जनता भी इस स्वाधीनता संग्राम में शामिल थी। बिना किसी धार्मिक, जातीय या लैगिक भेदभाव के। इसी तरह इन संस्मरणों में तत्कालीन ग्रामीण अर्थव्यवस्था और सामाजिक ताने–बाने की भी सराहनीय प्रस्तुति है, जो आत्मनिर्भरता और पारस्परिक मान–सम्मान को केन्द्र में रखकर विकसित हुई थी। महान राजनीतिज्ञ – सामाजिक सरोकारों से जुड़े स्वर्गीय 'पथिक' जी जैसे आदरणीय व्यक्तित्व की जीवनी और उनका साहित्य उपलब्ध कराने में लेखक को जो उल्लेखनीय सफलता मिली है, उसके लिए उन्हें हार्दिक शुभकामनाएं। आशा है, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की **स्मृति संरक्षण योजना** के अन्तर्गत प्रकाशित इस प्रेरणाप्रद पुस्तक 'विजय सिंह 'पथिक'का सभी जागरूक पाठक वर्गों में यथोचित स्वागत होगा।

उदय प्रताप सिंह
कार्यकारी अध्यक्ष

अपनी बात

विजय सिंह पथिक के बारे में पहली बार मैंने 1994 में सुना था। बस केवल इतना सुना था कि विश्व प्रसिद्ध बिजौलिया आन्दोलन के नायक, संयोजक, संचालक और संगठनकर्ता विजय सिंह पथिक ही थे। बाद में पता चला कि आन्दोलनकारी बनने से पहले पथिक जी क्रान्तिकारी रह चुके थे और 1915 में रास बिहारी बोस के नेतृत्व में हुए असफल सशस्त्र विद्रोह के भागीदार थे। यह भी पता चला कि विजय सिंह पथिक एक प्रखर पत्रकार थे और अंग्रेजी राज में छह अखबारों का संपादन उन्होंने किया। इसी बीच मुझे पथिक जी द्वारा रचित खंड काव्य 'प्रहलाद विजय' पढ़ने को मिला और मैंने पाया कि पथिक जी उच्च कोटि के कवि भी थे। लेकिन दुःख की बात यह है कि इतिहास में विजय सिंह पथिक को वह स्थान नहीं मिला जिसके वे हकदार थे। कारण चाहे कुछ भी रहे हों किन्तु उनके साथ भेदभाव और उपेक्षापूर्ण व्यवहार किया गया है।

जो नहीं हुआ, उसके लिए दूसरों को दोष देकर संतुष्ट हो जाना आम प्रवृत्ति है, किन्तु मेरा मत इससे भिन्न है। जो नहीं हुआ उसे करने का प्रयास हमें करना चाहिए। मैं यही कर रहा हूँ। 1994–95 से लगातार मैं पथिक जी के व्यक्तिव–कृतित्व और पहचान को स्थापित करने का प्रयास कर रहा हूँ। इस दिशा में कितनी सफलता मिली, इसका आकलन तो समाज करेगा। मैं कोई दावा नहीं करना चाहता। इसी लघु प्रयास की एक कड़ी के रूप में यह पुस्तक आपके समक्ष है। पुस्तक का प्रकाशन उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के द्वारा हो रहा है, हम पथिक अनुयायियों के लिए गौरव की बात है। इस महान कार्य में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष श्री उदय प्रताप सिंह जी का आशीर्वाद और संस्थान के निदेशक श्री मनीष शुक्ल, अनिल मिश्र व अमिता दुबे जी का जो सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिए आभार प्रकट करना मैं अपना दायित्व समझता हूँ।

राजकुमार भाटी

अनुक्रम

सामान्य परिचय

महान स्वतंत्रता सेनानी, प्रबुद्ध लेखक, प्रगतिशील विचारक, प्रतिभाशाली कवि, प्रखर पत्रकार, निर्भीक क्रान्तिकारी, सफल जनआंदोलनकारी, कुशल संगठनकर्ता, यशस्वी सम्पादक, ओजस्वी वक्ता, राजस्थान के जनक, रियासती प्रजा के पहले हिमायती, देश के प्रथम किसान सत्याग्रही, जनजाग्रति के अग्रदूत, समाज सुधार के अगुवा, सामाजिक बुराइयों के कट्टर विरोधी, विश्व प्रसिद्ध बिजौलिया आंदोलन के नायक, विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न, बहुभाषाविद और बहुमुखी प्रतिभा के धनी। यह छोटा सा परिचय है स्व० विजय सिंह पथिक का। उनका दूसरा परिचय यह है कि वे रासबिहारी बोस, शचीन्द्र नाथ सान्याल, खुदीराम बोस, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, गणेश शंकर विद्यार्थी और जमुनालाल बजाज के साथी, सहयोगी व सहकर्मी थे। पथिक जी का तीसरा परिचय यह है कि वे हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, बंगला, गुजराती, मराठी, राजस्थानी और अंग्रेजी भाषाओं के अच्छे जानकार थे। इन तमाम भाषाओं में उन्होंने 32 पुस्तकें लिखीं जिनमें राजनीतिक निबंध, लेख, कहानी, नाटक, उपन्यास, कविता, अनुवाद, हास्य-व्यंग्य, संस्मरण, इतिहास और दर्शन की पुस्तकें शामिल हैं। पथिक जी को देश में आमतौर पर बिजौलिया किसान आंदोलन के नायक के तौर पर ही जाना जाता है जबकि रियासती प्रजा की स्वतंत्रता को कांग्रेस के एजेंडे में शामिल कराना पथिक जी की उससे भी बड़ी उपलब्धि थी। पथिक जी अजमेर-मारवाड़-राजपुताना मध्य भारत (वर्तमान राजस्थान) कांग्रेस के प्रान्तीय अध्यक्ष रहे। उन्होंने छः अखबारों का सम्पादन भी किया।

उत्तर प्रदेश राज्य के जिला बुलन्दशहर स्थित गाँव गुठावली अख्त्यारपुर में एक देशभक्त व बहादुर गुर्जर किसान परिवार में 1885 ई० के आसपास किसी वर्ष की होली के दूसरे दिन दुल्हेंडी को विजय सिंह पथिक का जन्म हुआ था। इनके जन्म की सही तिथि वं वर्ष ज्ञात नहीं है। पथिक जी ने स्वयं एक संस्मरण में लिखा था कि उनका जन्म होली के दूसरे दिन प्रातः 4 और 5 बजे के बीच हुआ था।[1] डॉ० कन्हैयालाल राजपुरोहित ने इनकी जन्मतिथि 27 फरवरी 1884 ई० मानी है।[2] सामान्य तौर पर यही उनकी जन्मतिथि मान ली गई है और उनके अनुयायी 27 फरवरी को प्रत्येक वर्ष पथिक जी की जयंती मनाते हैं। पथिक जी का असली नाम भूपसिंह राठी था। देशभक्ति और वीरता इन्हें पुरखों से विरासत में मिली थी। इनके पिता व माता दोनों के परिवारों ने 1857 की क्रान्ति में हिस्सा लिया था और देश के लिए शहादत दी थी। इनके दादा इन्दर सिंह मालागढ़ रियासत के नवाब वलीदाद खाँ के दीवान और सेनापति थे। वलीदाद खाँ बादशाह बहादुरशाह जफ़र का रिश्तेदार था। 1857 की क्रान्ति में मालागढ़ की सेना

इन्दर सिंह के नेतृत्व में बहादुरीपूर्वक अंग्रेजों से लड़ी थी। इन्दर सिंह लड़ते हुए शहीद हो गये थे।[3]

इनके पिता हम्मीर सिंह और माता कमल कुँवरी भी अंग्रेजी सरकार के खिलाफ गतिविधियों में सक्रिय रहे थे। पथिक जी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि एक बार इनके पिता हम्मीर सिंह को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस इनके घर पहुँच गई। हम्मीर सिंह बीमार थे और चौपाल पर लेटे हुए थे। माता कमल कुँवरी ने पुलिस अधिकारी से आग्रह किया कि उनके पति बीमार हैं अतः उन्हें गिरफ्तार न किया जाय। किन्तु पुलिस अधिकारी नहीं माना और उन्हें गिरफ्तार कर साथ ले जाने पर अड़ गया। कमल कुँवरी चुपचाप घर के अन्दर गई और लाठी हाथ में लेकर लौटीं। उन्होंने लाठी से इस कदर पुलिस टुकड़ी पर प्रहार किये कि पुलिस जान बचा कर गाँव के बाहर भागी।[4] ऐसी वीर माता की कोख से विजय सिंह पथिक ने जन्म लिया था।

पथिक जी की माता कमल कुँवरी बचपन में उन्हें 1857 ई० की क्रांति में उनके परिवार द्वारा किये गये बलिदान और संघर्ष की कहानियाँ सुनाया करती थीं। वे बताया करती थीं कि किस तरह उनका पूरा गांव और क्षेत्र में गुर्जर जाति के सभी गांव बागी हो गये थे। गांवों के सभी पुरुष मोर्चे पर लड़ने चले गये थे और औरतें व बच्चे हथियार लेकर गांवों में पहरे दिया करते थे, कि कहीं अंग्रेज गांव पर धावा न बोल दें। कमल कुँवरी यह भी बताती थीं कि क्रांति की विफलता के बाद उनके गांव समेत सभी बागी गांवों के लोग अपने बच्चों और कीमती सामान लेकर गांवों को छोड़कर भाग गये थे। अंग्रेजी सरकार के जुल्मों से बचने के लिए ये लोग उत्तर प्रदेश, राजस्थान और मध्य प्रदेश तक जंगलों में मारे-मारे फिरते रहे। इस बीच कई बार अंग्रेजों से मुठभेड़ हुई, जिसमें महिलाओं ने बहादुरीपूर्वक अंग्रेज सैनिकों का मुकाबला किया। क्रान्ति के विफल होने के बाद जब अंग्रेजों ने आम माफी की घोषणा कर दी, तब ये लोग लौटकर अपने गांवों में आये, किन्तु अंग्रेजों की पुलिस उन्हें फिर भी समय-समय पर परेशान करती रहती थी।

विजय सिंह पथिक के माता-पिता का देहांत उनके बचपन में ही हो गया था। इनका लालन पालन ताऊ महबूब सिंह राठी के द्वारा हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा मालागढ़ के प्राइमरी स्कूल में हुई। उच्च शिक्षा के लिए ये किसी स्कूल या कॉलेज में नहीं जा सके, किन्तु वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने स्वाध्याय से ही राजनीति, इतिहास और साहित्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वे हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, राजस्थानी समेत कई भाषाओं में भी पारंगत थे। वे उच्च कोटि के साहित्यकार और प्रखर पत्रकार थे। माता-पिता के स्वर्गवास होने के कुछ वर्ष पश्चात् वे अपनी बड़ी बहिन मोहन कुँवरी के पास इंदौर चले गये। उनके बहनोई धर्मसिंह इंदौर में राजकीय सेवा में थे।

पथिक जी के एक बड़े भाई भी थे जिनका नाम नयन सिंह था। इनकी युवावस्था में असमय मृत्यु हो गई थी। इनकी मृत्यु पर विजय सिंह पथिक ने एक कविता लिखी थी जो उनके काव्य संग्रह पथिक विनोद में पृष्ठ संख्या 154 पर संग्रहीत है-

नयन बिन शून्य हुआ संसार।
कौन दिखावेगा अब जग में नूतन पथ विस्तार?
कौन दिखावेगा तैयारी बनने की 'गद्दार'?
''फिर दिल्ली तंवरों की होगी''- कह-कह भर हुंकार।
अपढ़ तदपि था भरा अनुज में स्वतंत्रता का प्यार
कष्ट सहा पर दिया न करने उसे दास्य स्वीकार।
करा स्मरण 'सैनिक विद्रोह' में प्रपिता का संहार
किया सदा ही अनुज हृदय में क्रान्ति-प्रकाश-प्रसार।
भुला दिया माता-वियोग का स्वप्रेम से दुःख भार
जाना नहीं कभी जीवन में किसको कहते हार।
'नयन सिंह' हो किया सदा ही सिंह सदृश व्यवहार
घोर विपत्ति में भी न कभी मुख आई हा हा कार।
वीर किया हम्मीर पुत्रवत तुमने निज पथ पार
किन्तु सहोदर 'पथिक' तुम्हारा है अब भी मझधार।

सन्दर्भ व टिप्पणी

1. राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी पृ०सं० 22
2. स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहुतियाँ पृ०सं० 192
3. स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहुतियाँ पृ०सं० १92
4. डॉ० पदम सिंह वर्मा कृत विजय सिंह पथिक पृ०सं० 3

पथिक जी का क्रान्तिकारी जीवन

इन्दौर प्रवास के दौरान ही भूपसिंह राठी क्रान्तिकारी गतिविधियों में संलग्न हो गये। इनके दूर के रिश्ते के चाचा सूबेदार बलदेव सिंह होल्कर राज्य में अंग्रेजों के अधिकारी थे परन्तु गुप्त रुप से क्रान्तिकारियों का सहयोग करते थे। सूबेदार बलदेव सिंह से भूपसिंह राठी ने हथियार चलाने व गोला-बारुद बनाने का प्रशिक्षण प्राप्त किया।[7] इन्दौर में ही 1905 ई० में ये प्रसिद्ध क्रान्तिकारी शचीन्द्र नाथ सान्याल के सम्पर्क में आये। सान्याल को यह समझते देर न लगी कि भूपसिंह के अन्दर वे सारे गुण मौजूद हैं जो एक क्रान्तिकारी में होने चाहिए। सान्याल ने कुछ दिनों तक भूपसिंह को परखा और जब उन्हें विश्वास हो गया कि यह युवक मातृभूमि की बेड़ी काटने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने को भी तैयार है तो उन्होंने भूपसिंह को अपनी टोली में शामिल कर लिया और उस समय के देश के सबसे महान क्रान्तिकारी नेता रासबिहारी बोस से मिलवाया।

क्रान्तिकारियों का लक्ष्य किसी भी तरह सरकार को नुकसान पहुँचाना और उसे परेशान करने का रहता था। वे सरकारी धन को लूटते थे और जरुरत पड़ने पर सरकारी कर्मचारियों-अधिकारियों की हत्या भी कर देते थे। भूपसिंह राठी ने ऐसी कई हिंसक कार्यवाइयों में हिस्सा भी लिया था। 1908 ई० में बंगाल के गवर्नर फ्रेजर की स्पेशल रेलगाड़ी पर बम फेंका गया। इस कार्य में भूपसिंह की प्रमुख भूमिका थी। मुजफ्फरपुर के जिलाधीश किंग्सफोर्ड की हत्या की जिम्मेदारी खुदीराम बोस और प्रफुल्ल को दी गई। 30 अप्रैल 1908 ई० को किंग्सफोर्ड के बंगले से आती कार को निशाना बनाया गया। इसमें दो अंग्रेज महिलाएं भी मारी गईं। इस घटना में शामिल लोगों की गिरफ्तारी के लिए पुलिस ने मुखबिर की सूचना पर बारीन्द्र घोष के मणिकतल्ला बाग पर छापा मारा। यहाँ से भारी मात्रा में गोला-बारुद व हथियारों सहित 36 क्रान्तिकारी पकड़े गये। इनमें भूपसिंह राठी भी थे। इनमें से कुछ को फाँसी दे दी गई, कुछ कालेपानी भेज दिये गये, कई सबूतों के अभाव में छूट गये, जिनमें से भूपसिंह भी थे। इन्हीं में से एक नरेन्द्रनाथ गोस्वामी सरकारी गवाह बन गया। गद्दार को सजा देने का काम जेल में ही बंद सतेन्द्र कुमार तथा कन्हाईलाल को सौंपा गया। भूपसिंह बिहारी मजदूर का वेश धारण करके जेल गये और उन्हें रिवॉल्वर उपलब्ध कराई। सतेन्द्र कुमार ने गोली मारकर नरेन्द्रनाथ गोस्वामी की हत्या कर दी। सरकार ने सतेन्द्र कुमार को फाँसी लगाकर उसका शव जेल में फूंक दिया। इसकी प्रतिक्रियास्वरुप क्रान्तिकारियों ने जगह-जगह बम फेंककर सरकार को आतंकित किया। भूपसिंह राठी ने कलकत्ता के ग्रे स्ट्रीट में बम फेंका।[8]

1912 ई० में दिल्ली को भारत की राजधानी बनाया गया। औपचारिक उद्घाटन समारोह में वायसराय का जुलूस निकाला गया। क्रान्तिकारियों ने इस पर हमले

की योजना बनाई। हाथी पर सवार वायसराय का जुलूस जब चांदनी चौक से गुजर रहा था तो उन पर बम फेंका गया। बम फेंकने वालों में भूपसिंह भी शामिल थे। भूपसिंह ने दिल्ली के पास यमुना व हिन्डन नदियों के बीच बीहड़ में स्थित नलगढ़ा गाँव में हथियार बनाने व उन्हें चलाने का प्रशिक्षण देने का एक कारखाना भी स्थापित किया था। वर्तमान में यह गाँव नोएडा महानगर का हिस्सा है और नोएडा प्राधिकरण ने यहाँ एक भव्य शहीद स्मारक स्थापित करने की योजना बनाई है। उत्तर-प्रदेश सरकार ने ग्रेटर नोएडा स्थित अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के स्पोर्टस स्टेडियम का नाम ''शहीद विजय सिंह पथिक स्पोर्टस कॉम्पलैक्स'' रखा है।

1914 ई० में रासबिहारी बोस और शचीन्द्र नाथ सान्याल अपने संगठन अभिनव भारत समिति के माध्यम से पूरे देश में एक साथ सशस्त्र क्रान्ति करने की योजना बनाने में लगे थे। इसी समय राजस्थान में भी 'वीर भारत सभा' नाम का गुप्त क्रान्तिकारी संगठन स्थापित हो चुका था। रासबिहारी बोस ने एक खास मकसद से भूपसिंह को अजमेर भेजा। उन्हें पुरानी तोड़ेदार बन्दूकें और कारतूस इकट्ठे करने का काम सौंपा गया। बंदूकों की मरम्मत करने और खाली कारतूसों को भरने का काम सीखने के लिए भूपसिंह ने अजमेर के रेलवे वर्कशाप में नौकरी की और वहीं के सुखदीन मिस्त्री को विश्वास में लेकर उसे अपने दल में मिला लिया।[6]

हथियारों की खरीद और संग्रह के साथ-साथ राजस्थान में क्रान्तिकारी संगठन स्थापित करने की जिम्मेदारी भी रासबिहारी बोस ने भूपसिंह और भाई बालमुकुंद को सौंप दी थी। रासबिहारी बोस की योजना थी कि अंग्रेज विरोधी राजाओं को भी क्रान्ति में सम्मिलित किया जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भूपसिंह कई राजाओं से मिले। वे खरवा नरेश ठाकुर गोपाल सिंह के निजी सचिव बन गये और राजाओं को अंग्रेजों के खिलाफ बगावत करने के लिए उकसाने लगे।

रासबिहारी बोस की योजना थी कि 21 फरवरी 1915 ई० को पंजाब, दिल्ली, उत्तर भारत तथा राजस्थान में एक साथ सशस्त्र विद्रोह प्रारम्भ किया जाए। क्रान्तिकारियों से सैनिकों का सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। भूपसिंह राठी को खरवा नरेश ठाकुर गोपाल सिंह और देशभक्त व्यवसायी दामोदर दास राठी की सहायता से अजमेर, ब्यावर व नसीराबाद पर अधिकार कर लेने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। दुर्भाग्य से 19 फरवरी को ही अंग्रेज सरकार को इस षड़यंत्र की सूचना मिल गई और पंजाब के क्रान्तिकारी पकड़ लिये गये। भूपसिंह राठी कई हजार सशस्त्र क्रान्तिकारियों के साथ खरवा स्टेशन से कुछ दूर जंगल में क्रान्ति का संकेत पाने की प्रतीक्षा करते रहे। तय यह हुआ था कि रात दस बजे अजमेर से अहमदाबाद जाने वाली गाड़ी से रासबिहारी बोस का भेजा हुआ क्रान्तिकारी आयेगा और स्टेशन से गाड़ी के चलते ही बम का धमाका करेगा, किन्तु संकेत नहीं मिला। अगले दिन संदेशवाहक ने आकर क्रान्ति की सूचना लीक होने और लाहौर की गिरफ्तारियों की सूचना भूपसिंह को दी। भूपसिंह ने तीस हजार बन्दूकें तथा गोला-बारुद गुप्त स्थानों पर छिपा दिया और क्रान्तिकारी सैनिकों को

तितर-बितर हो जाने का आदेश दिया।[7]

क्रान्ति की योजना की असफलता के बाद अंग्रेज सरकार क्रान्तिकारियों के पीछे हाथ धोकर पड़ गई। पुलिस ने खरवा स्टेशन पर छापा मारकर भूपसिंह, गोपाल सिंह व उनके साथियों की गिरफ्तारी की तैयारी की, जिसकी सूचना क्रान्तिकारियों को मिल गई। भूपसिंह ने प्रस्ताव रखा कि चुपचाप आत्मसमर्पण कर अंग्रेजों की जेल में सड़ने अथवा चोर-डाकुओं की तरह फाँसी पर लटकाये जाने के बजाय बहादुरों की तरह लड़ कर मरेंगे। सबने इस प्रस्ताव को मान लिया। साधारण सदस्यों को खरवा से हटा कर अन्यंत्र भेज दिया गया। भूपसिंह, गोपाल सिंह, उनके चाचा मोड़ सिंह, रलियाराम और सवाई सिंह बहुत सा भोजन और अस्त्र-शस्त्र लेकर खरवा के पास के जंगल में बने शिकारी बुर्ज में मोर्चा संभाल कर जम गये।[9]

अगले दिन अंग्रेज कमिश्नर 500 भारतीय सैनिकों की टुकड़ी लेकर वहां आ पहुंचा। उसने चारों ओर से घेरकर उन्हें आत्मसमर्पण के लिए ललकारा किन्तु मरने-मारने को अमादा देखकर उसकी हिम्मत हमला करने की नहीं हुई। कमिश्नर को डर था कि दो-चार दिन मुठभेड़ चल गई तो आस-पास की जनता क्रान्तिकारियों की मदद के लिए आ सकती है और फिर उसे भारतीय सैनिक टुकड़ी की वफादारी पर भी संदेह था। गोली चलने की नौबत न आने देने का आदेश उसे ऊपर से ही था। अतः कमिश्नर ने मुठभेड़ के बजाय बातचीत से समर्पण का रास्ता निकालना चाहा। बहस-मुबाहिसे के बाद तय हुआ कि पांचों क्रान्तिकारियों को हवालात या जेल में बन्द न करके टाड़गढ़ के किले में नजरबन्द रखा जाएगा। क्रान्तिकारियों की यह शर्त भी मान ली गई कि उन्हें आस-पास के जंगल में शिकार की सुविधा दी जाएगी और इसके लिये बन्दूक, तलवार और घोड़े उपलब्ध कराये जायेंगे। यह भी तय हुआ कि उनके आस-पास जहां तक दृष्टि पड़े फौज या पुलिस का पहरा उस रूप में न रखा जायेगा, जिसमें उन्हें कैदी होने का आभास हो। इस समझौते के पन्द्रह दिन बाद ही सोमदत्त नामक मुखबिर की सूचना पर भूपसिंह का नाम लाहौर षड़यंत्र केस में जोड़ दिया गया और उन्हें गिरफ्तार कर तुरन्त लाहौर भेजने का आदेश जारी हुआ। गिरफ्तारी वारंट की सूचना भूपसिंह को मिल गई और वे साधू के वेश में पहरेदारों की आंखों में धूल झोंक कर टाडगढ़ क़िले से फरार हो गये।[10]

सन्दर्भ व टिप्पणी

5. प्रो० मनबीर सिंह, विजय सिंह पथिक - व्यक्तित्व एवं कृतित्व
6. राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी पृ०सं० 23
7. विजय सिंह पथिक स्मृति ग्रन्थ - सुमनेश जोशी पृ०सं० 5
8. डॉ० पदम सिंह वर्मा कृत विजय सिंह पथिक पृ०सं० 10
9. डॉ० पदम सिंह वर्मा कृत विजय सिंह पथिक पृ०सं० 6
10. डॉ० पदम सिंह वर्मा कृत विजय सिंह पथिक पृ०सं० 6

आंदोलनकारी पथिक जी

क्रान्ति की असफलता के बाद पथिक जी के क्रान्तिकारी साथी बिछड़ गये। रासबिहारी बोस विदेश चले गये। कुछ को कालेपानी तथा लम्बी कैद की सजा हो गई। देशी राजा अंग्रेजों के भय से अब सहायता नहीं दे रहे थे। संसाधन और हथियार सब इधर-उधर हो गये थे। क्रान्ति को पुनर्संगठित करना अब संभव न था। अब वे नये मार्ग की खोज में थे। यहीं से भूपसिंह राठी का विजय सिंह पथिक के रूप में अवतार हुआ। इस समय तक भूपसिंह राजस्थान के चर्चित व्यक्ति हो गये थे। ब्रिटिश सरकार उनकी खोज में थी। गिरफ्तारी से बचने के लिए भूपसिंह ने दाढ़ी बढ़ा ली थी, साधूवेश धारण कर लिया था और नाम बदल कर विजय सिंह पथिक रख लिया था। जंगलों और गाँवों में महीनों भटकने के बाद आश्रय की तलाश में विजय सिंह पथिक गुरला गाँव पहुंचे। यहाँ के जमींदार ने उन्हें छिपाकर रखा। इसके बाद कुछ दिन मिनाय में साधू के रुप में रहे। यहां साधूरुपधारी पथिक की ख्याति घर-घर तक पहुँचने लगी। सरकार की नजर से बचने के लिए पथिक जी यहां से मेगंटिया और फिर कांकरोली चले गये। कुछ दिन बाद पास के भाणा गाँव चले गये। वहां इन्होंने एक पांठशाला की स्थापना की। यहां इनका परिचय मोही के डूंगर सिंह भाटी और बारहठजी के दामाद ईश्वरदान आशिया से हुआ। भाणा से वे मोही चले गये। यहां गुप्तचरों की गतिविधि बढ़ने पर चित्तौड़ चले गये। चित्तौड़ के पास ओड़छी में ठाकुर गोपाल सिंह के पास सवा वर्ष तक अज्ञातवास में रहे। चित्तौड़ में पथिक जी विद्या प्रचारिणी सभा से जुड़ गये। इसी सभा के वार्षिक अधिवेशन में साधू सीतारामदास से इनकी भेंट हुई, जिन्होंने बिजौलिया के किसानों की कष्ट गाथा सुनाकर उनका नेतृत्व ग्रहण करने की प्रार्थना पथिक जी से की।[1] पथिक जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और बिजौलिया चले गये। बिजौलिया आंदोलन से पथिक जी को राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति मिली और वे देश के बड़े नेताओं की पंक्ति में शामिल हो गये।

बिजौलिया एक सामंती ठिकाना था और वहां के किसानों का बुरी तरह शोषण और उत्पीड़न हो रहा था। देखते-देखते पथिक जी ने इन किसानों का प्रेम और विश्वास प्राप्त कर लिया। उन्होंने किसान पंचायत को गठित किया और किसानों को संगठित होकर अन्याय का मुकाबला करने के लिए प्रेरित किया। फलस्वरुप बिजौलिया में देश का सबसे पहला सामूहिक किसान सत्याग्रह हुआ। किसानों से जागीरदार लगान के अलावा 80 प्रकार की लागतें (टैक्स) वसूल करता था। तरह-तरह की बेगारें लेता था और उन्हें अमानुषिक दण्ड दिये जाते थे। किसानों ने बेगार, लागतें और लगान देने से इंकार कर दिया और कई वर्षों तक खेती नहीं की। यह किसान-सत्याग्रह छः-सात वर्षों तक चला। जागीरदार और राज्य ने भी दमन करने में कोई कसर नहीं रखी, किन्तु किसान भी

पस्त-हिम्मत नहीं हुए। बिजौलिया के किसान-आंदोलन ने महात्मा गांधी का भी ध्यान आकर्षित किया और उसका अध्ययन करने के लिए उन्होंने अपने निजी सचिव महादेव देसाई को भेजा था। महात्मा गांधी ने यह आश्वासन दिया था कि यदि राज्य ने किसानों के साथ न्याय नहीं किया तो वह स्वयं उनका नेतृत्व करेंगे, किन्तु इसकी नौबत नहीं आई। बिजौलिया के आन्दोलन का असर दूर-दूर तक पड़ रहा था। लोग अन्याय और अत्याचारों के विरुद्ध उठ रहे थे। जन असंतोष व्यापक होता जा रहा था। अतः ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि ने राज्य को समझौता करने का परामर्श दिया और उनकी मध्यस्थता में सामन्त और किसानों के बीच सम्मानपूर्वक समझौता हो गया।

अनुचित लागतें माफ कर दी गईं, जमीन का फिर से बन्दोबस्त कराने का फैसला हुआ, किसान पंचायत को किसानों की प्रतिनिधि संस्था के रुप में स्वीकार किया गया एवं उसे कुछ कानूनी अधिकार भी प्रदान किये गये। बिजौलिया का यह सफल और शानदार किसान सत्याग्रह पथिक जी के नेतृत्व का ही प्रतिफल था। उन्होंने किसानों के बीच रहकर उसे चलाया। बिजौलिया के किसान पथिक जी की सेवाओं को आज भी याद करते हैं और उनकी स्मृति में अपना सिर श्रृद्धा से झुका लेते हैं।

बिजौलिया के पास ही बेंगू नाम का एक अन्य ठिकाना था। यहां के किसान भी पथिक जी के नेतृत्व में आंदोलनरत थे। यहां सरकार ने समझौते के बजाय दमन का रास्ता अपनाया। 10 सितम्बर 1923 ई० को पथिक जी को गिरफ्तार कर लिया गया। पथिक जी पर देशद्रोह, जनता को बगावत के लिए भड़काने, आपत्तिजनक सामग्री रखने तथा महाराणा की अवज्ञा के आरोपों में मुकदमा चलाया गया। सरकार ने त्रिभुवन नाथ सुपारी की अध्यक्षता में विशेष न्यायालय का गठन किया। पथिक जी ने खुद अपनी पैरवी की। न्यायालय के समक्ष दिया गया पथिक जी का बयान ऐतिहासिक महत्व का है।[12] पथिक जी के बयान से प्रभावित होकर न्यायालय ने उन्हें बरी कर दिया किन्तु सरकार ने उन्हें रिहा नहीं किया। इस बार अर्द्धशिक्षित दरबारियों का एक कमीशन बैठाया गया और उस कमीशन ने पथिक जी को पाँच वर्ष के कारावास की सजा दे दी।[13]

सिरोही में भील आंदोलन का नेतृत्व भी अप्रत्यक्ष रुप से पथिक जी के हाथों में ही था। सिरोही का दीवान मालवीय पथिक जी से बहुत प्रभावित था और भीलों से समझौता करना चाहता था। उसने जमींदार को भी इसके लिए राजी कर लिया था, किन्तु अंग्रेज अटैची समझौते के खिलाफ था। इन्हीं दिनों मेवाड़, ईडर, सिरोही तथा अन्य कई भागों में भीलों ने सशस्त्र विद्रोह कर दिया। अंग्रेज सरकार ने विद्रोह को दबाने के लिए सेना भेजी। 01 मई 1922 ई० को सेना और भीलों के बीच लड़ाई छिड़ गई। गाँव के गाँव तोपों से उड़ा दिये गये, कितने ही भील मारे गये, कुछ सैनिक भी मरे। पथिक जी ने सेना की ज्यादतियों की रिपोर्ट अजमेर के अखबारों में प्रकाशित करवाई। उन्होंने ऐनी हडसन के माध्यम से ब्रिटेन के हाऊस ऑफ कामन्स में भी यह प्रश्न उठवाया और कई ब्रिटिश सांसदों तक सेना के अत्याचारों की खबर पहुँचवाई।

सन्दर्भ व टिप्पणी

11. स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहुतियाँ पृ०सं० 193
12. स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहुतियाँ पृ०सं० 222
13. राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी पृ०सं० 32

पथिक जी का राजनीतिक व्यक्तित्व

विजय सिंह पथिक एक कुशल राजनीतिज्ञ भी थे। 1919 ई० में अमृतसर में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में पहुंचकर इन्होंने बिजौलिया के किसानों की समस्या उठाई थी। इन्होंने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को बिजौलिया के किसानों की करुण गाथा सुनाई। तिलक जी उनके विवरण से इतने प्रभावित हुए कि कांग्रेस अधिवेशन में बिजौलिया सम्बन्धी प्रस्ताव रखना स्वीकार कर लिया। श्री केलकर ने उनके द्वारा रखे प्रस्ताव का समर्थन किया। पथिक जी महात्मा गांधी जी से भी मिले। गांधी ने बिजौलिया के बारे में अधिक जानकारी हांसिल करने के लिंए पथिक जी को मुम्बई बुलवाया। वे भी पथिक जी और बिजौलिया आंदोलन से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने निजी सचिव महादेव देसाई को अध्ययन के लिए वहां भेजा।[14]

1920 ई० में नागपुर में कांग्रेस का ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ। पथिक जी ने अधिवेशन स्थल पर राजस्थान की देशी रियासतों द्वारा ढाये जाने वाले अत्याचारों की एक प्रदर्शनी आयोजित की। यह प्रदर्शनी इतनी प्रभावशाली सिद्ध हुई कि देश के सभी भागों से आये कांग्रेस प्रतिनिधियों का ध्यान देशी रियासतों की ओर आकृष्ट हुआ। पथिक जी के प्रयास से नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस की नीति में मौलिक परिवर्तन किया गया। ब्रिटिश भारत की संकुचित परिधि को छोड़कर कांग्रेस ने देशी राज्यों सहित सम्पूर्ण हिन्दुस्तान की आजादी अपना ध्येय घोषित किया और देशी रियासतों की प्रजा को भी कांग्रेस का प्रतिनिधि बनने का अधिकार दिया गया।[15]

1920 में वर्धा में विजयसिंह पथिक ने राजस्थान सेवा संघ की स्थापना की। 1921 में इसका स्थानान्तरण अजमेर में हो गया तथा संघ की गतिविधियों का मुख्यालय बन गया। इस संस्था का उद्‌देश्य देशी रिसासत की प्रजा के कष्टों को कम करना, देशी राज्यों की जनता को राजा और ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों और शोषण से मुक्ति हेतु देशभक्त युवकों को संगठित कर प्रशिक्षण देकर देश सेवा में लगाना और उनका निर्देशन करना था। इस संस्था के सदस्य आजीवन सेवा का व्रत लेते और निजी सम्पत्ति नहीं रखते थे। मणिकलाल वर्मा, रामनारायण चौधरी, हरिभाई किंकर, नैनूराम कोठा और मदनसिंह करौला आदि देशभक्त पथिक की ही खोज थे, जिनके प्रयासों से आधुनिक राजस्थान खड़ा हुआ। इस संस्था के माध्यम से पथिक के नेतृत्व में राजस्थान में राजनैतिक चेतना का विकास और प्रसार हुआ। "विजयसिंह पथिक ने राजा और जागीरदारों के अत्याचार, शोषण और अनियमितताओं के विरूद्ध शंखनाद किया तथा लोक शक्तियों को संगठित कर सत्याग्रह का सूत्रपात किया"। बूंदी, सिरोही, जोधपुर, जयपुर, सीकर, खेतड़ी तथा कोटा आदि स्थानों पर इसकी शाखाएं खोली गयीं।

राजस्थान केसरी, राजस्थान सन्देश एवं तरुण राजस्थान पत्रों के माध्यम से न केवल भारत वरन विदेशों में भी रियासती जनता के कष्टों को उभारा। संघ ने आन्दोलन को इतनी तीव्रता प्रदान की कि रियासती जनता की दुखभरी चीत्कार सात समुद्र पार इग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट में भी गूंज उठी। "तत्कालीन लेबर पार्टी के सदस्य सर पैथिक लारेंस ने पार्लियामेन्ट में देशी रियासतों की जनता के पक्ष में प्रश्नों की झड़ी लगा दी थी। बाद में जब पथिक जेल में थे, तब भी पैथिक लारेंस ने उनसे भेंट करने का प्रयास किया था मगर मेवाड़ राज्य ने इसकी अनुमति नहीं दी"। बिजौलिया, बेगू एवं बरार का किसान आन्दोलन तथा मोतीलाल तेजावत के भील आन्दोलन इसी सेवा संघ के नेतृत्व में संचालित हुए। राजस्थान में राजनैतिक जागरूकता का श्रेय राजस्थान सेवा संघ को प्राप्त है।

बाद में सेवा संघ से अलग होकर पथिक ने अपना ज्यादातर समय रेलवे मजदूरों के संगठन और देशी राज्यों की परिषद की गतिविधियों में लगाया। 1922 में देशी राज्यों के कुछ प्रतिनिधि पूना में एकत्रित हुए। इसमें देशी राज्यों के प्रतिनिधियों का एक राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलन बुलाने तथा केन्द्रीय सभा स्थापित करने का निर्णय लिया गया।[16] 1927 में देशी राज्यों के इस संगठन का प्रथम अधिवेशन रामचन्द्र राव की अध्यक्षता में बम्बई में हुआ। 67 राज्यों के 600 प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया। विजयसिंह पथिक इस सम्मेलन के उपाध्यक्ष बने। इसमें पथिक का जोरदार स्वागत हुआ। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के प्रथम अधिवेशन में जब पथिक भाग लेने 17 दिसम्बर 1927 को पहुँचे तो मुम्बई की महानगरी में उनका जो स्वागत हुआ, वैसा शानदार स्वागत मनोनीत अध्यक्ष रामचन्द्र राव का भी नहीं हुआ था। इस सम्मेलन में प्रस्ताव पारित किया गया कि देशी राज्य अपने-अपने क्षेत्र में नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करें तथा स्वतन्त्र न्यायालयों की स्थापना करें।

पथिक ने अगस्त 1928 के लखनऊ के सर्वदलीय सम्मेलन में इस परिषद के प्रतिनिधि के रूप में रामनारायण चौधरी तथा मणिकलाल वर्मा के साथ भाग लिया। 1928 में पथिक ने काकोरी षडयन्त्र केस तथा अन्य मुद्दों पर गांधीजी से पत्र व्यवहार किया। 1928 में मद्रास में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में पथिक ने अखिल भारतीय देशी राज्य परिषद के प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया और पथिक के प्रयास से कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पारित कर देशी शासकों से अनुरोध किया कि वे अपने राज्यों में उत्तरदायी शासन स्थापित करें और अपनी जनता को नागरिक अधिकार प्रदान करें। यहां से देशी रियासतों और कांग्रेस के सम्बन्धों में महत्वपूर्ण मोड़ आया। कांग्रेस द्वारा देशी राज्यों के उत्तरदायी शासन की मांग से राष्ट्रीय आन्दोलन में नये अध्याय की शुरूआत हुई।[17]

1929 के लाहौर अधिवेशन में रियासतों में उत्तरदायी सरकार की मांगों को फिर दोहराया गया और रियासतों को कांग्रेस ने अपनी पूरी सहानुभूति का विश्वास दिलाया। लाहौर के 1929 के ऐतिहासिक अधिवेशन में पथिक ने

अजमेर-मारवाड-राजपूताना व मध्य भारत के कांग्रेस के प्रांतीय अध्यक्ष के रूप में भाग लिया। प्रथम पूर्ण स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर 26 जनवरी 1930 को गाया गया राष्ट्रीय गान "प्राण मित्रो भले ही गंवाना पर झंडा न नीचे झुकाना" के लेखक पथिक ही थे। फरवरी 1930 में पं० मोतीलाल नेहरू से मिलकर पथिक ने रियासती जनता के अधिकारों की सुरक्षा के लिए एसोसियेटेड प्रेस में मोतीलाल नेहरू का एक वक्तव्य जारी करवाया। 1930 में गांधीजी द्वारा संचालित सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ हो गया। अजमेर-मारवाड़- राजपूताना व मध्यभारत के प्रान्तीय कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में उन्होंने आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। पथिक को अन्य आन्दोलनकारियों सहित अप्रैल 1930 में गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। गांधी-इरविन समझौता होने पर नवम्बर 1930 में जेल से रिहा हुए।[18]

सन्दर्भ व टिप्पणी

14. स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहुतियाँ पृ०सं० 207
15. स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहुतियाँ पृ०सं० 208
16. आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास
17. प्रो० मनबीर सिंह, विजय सिंह पथिक - व्यक्तित्व एवं कृतित्व
18. प्रो० मनबीर सिंह, विजय सिंह पथिक - व्यक्तित्व एवं कृतित्व

पत्रकार पथिक जी

विजय सिंह पथिक जी एक उत्कृष्ट कोटि के पत्रकार भी थे। अपने आंदोलनों और राजनीतिक अभियानों को आगे बढ़ाने में उन्होंने अपनी पत्रकार प्रतिभा का भरपूर उपयोग किया। प्रताप के यशस्वी सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी से पथिक जी के अच्छे संबंध थे। बिजौलिया आंदोलन के दौरान पथिक जी ने किसानों की ओर से विद्यार्थी जी को राखी भेजी थी। गणेश शंकर विद्यार्थी ने इस राखी का पूरा मान रखा और लगातार बिजौलिया किसान आंदोलन के पक्ष में लेखों की श्रृंखला निकालते रहे। पथिक जी के लेख भी 'प्रताप' में छपते थे। इसके अलावा इलाहाबाद से प्रकाशित 'अभ्युदय', कलकत्ता से 'भारत मित्र' और पूना से प्रकाशित मराठा पत्रों का भी भरपूर सहयोग पथिक जी को मिला। बिजौलिया आंदोलन के दौरान पथिक जी एक हस्तलिखित पम्पलेट 'ऊपरमाल को डंको' भी निकालते थे, जो किसानों में बहुत लोकप्रिय था।

पथिक जी को पत्रकारिता के क्षेत्र में ख्याति 1920 में प्रकाशित 'राजस्थान केसरी' नामक साप्ताहिक समाचार पत्र से प्राप्त हुई। मुम्बई में गांधी जी से दिशा-निर्देश पाकर पथिक जी के सम्पादन में यह पत्र वर्धा से प्रकाशित हुआ। 'राजस्थान केसरी' राजस्थान के लोगों द्वारा निकाला जाने वाला प्रथम समाचारपत्र था। बाल गंगाधर तिलक के 'मराठा केसरी' का सहधर्मी यह पत्र जनता की आवाज को मुखर करने लगा। अंग्रेज सरकार इस पत्र की निर्भीक वाणी से घबरा गई और अपना दमन चक्र तेज कर दिया। सरकारी दमन के कारण यह पत्र अल्पायु में ही बन्द हो गया।

इसके बाद पथिक जी ने 'राजस्थान संदेश' नामक पत्र का प्रकाशन शुरु किया। इस पत्र ने 'राजस्थान केसरी' के बन्द होने से उत्पन्न शून्य को भरने में कोई कसर नहीं छोड़ी। फलस्वरुप इस पत्र को भी सरकारी दमन का शिकार होकर बन्द होना पड़ा। इन दो पत्रों के बन्द हो जाने के बाद 'नवीन राजस्थान' नामक साप्ताहिक पत्र का जन्म हुआ। यह राजस्थान सेवा संघ का पत्र था। इस पत्र का आदर्श वाक्य पथिक जी द्वारा रचित ये पंक्तियाँ होती थीं-

''यश वैभव सुख की चाह नहीं,
परवाह नहीं जीवन न रहे।
यदि इच्छा है तो यह है,
जग में स्वेच्छाचार दमन न रहे।''

कुछ ही दिन बाद सरकार ने इस पत्र के प्रकाशन पर भी रोक लगा दी और यह घोषणा कर दी गई कि इन पत्रों को पढ़ना, रखना अथवा उनकी सामग्री को प्रचारित करने पर एक वर्ष का कठोर कारावास और एक हजार रुपये का जुर्माना किया जाएगा,

लेकिन पथिक जी ने प्रतिबंध के बाद भी पत्र को जारी रखने का उपाय खोज निकाला और पत्र का नाम 'नवीन राजस्थान' से बदलकर 'तरुण राजस्थान' कर दिया। बाद में इस पत्र को भी बन्द हो जाना पड़ा। 1938-39 ई० में जब पथिक जी राजस्थान छोड़कर आगरा आ गये तो वहां से उन्होंने 'नव संदेश' पत्र निकाला। इस पत्र और पथिक जी के विषय में श्री बी०एस० ठाकुर 1940 ई० में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'हिन्दी पत्रों के सम्पादक' में लिखते हैं- ''नव संदेश राष्ट्रीय पत्र के संचालक और सम्पादक राजस्थान के प्रसिद्ध पत्रकार और नेता श्री विजय सिंह पथिक हैं। यद्यपि आपका पत्र अभी नया है पर वह अपनी सुनीति के कारण दिन-दिन लोकप्रिय होता जा रहा है। श्री पथिक जी बेधड़क व्यक्ति हैं और लिखते भी बेधड़क होकर हैं। आपकी नीति की हम मुक्त कंठ से प्रसंशा करते हैं।''

साहित्यकार के रूप में पथिक जी

विजय सिंह पथिक हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, गुजराती, मराठी और राजस्थानी भाषाओं के जानकार थे। उन्होंने अलग-अलग विषयों पर 32 पुस्तकें लिखीं। इनमें से सात पुस्तकें ही अभी तक प्रकाशित हो सकी हैं। (पथिक जी के प्रकाशित और अप्रकाशित साहित्य की सूची इस पुस्तक के अन्त में दी गई है।) राजस्थान सरकार में निदेशक पद पर रहे और पथिक जी की जीवनी के लेखक शंकर सहाय सक्सेना ने एक जगह लिखा है- ''यदि कभी उनके राजनीति सम्बन्धी साहित्य और लेख प्रकाशित हुए तो राजनीतिक साहित्य में उनका महत्वपूर्ण स्थान होगा। उनके गणतंत्र सम्बन्धी तथा वेदों में विश्व इतिहास सम्बन्धी साहित्य उस विषय पर हिन्दी में शोध कार्य का उत्तम और प्रमाणिक ग्रन्थ हैं। ऐसा उपयोगी और महत्वपूर्ण साहित्य अप्रकाशित रहे, यह हमारी अकर्मण्यता का चिन्ह है और उनके साहित्य के प्रति हमारी उदासीनता पर कठोर व्यंग्य है।''[19]

पथिक जी ऊँचे दर्जे के कवि और साहित्यकार थे। बिजौलिया आंदोलन के दौरान उनके गीतों और कविताओं ने जनता में जागृति लाने का काम किया था। पथिक जी ने अनेक विषयों पर कविताएं और कहानियाँ लिखीं, किन्तु देशप्रेम उनका मुख्य विषय था। एक कविता में मातृभमि को प्रणाम करते हुए पथिक जी ईश्वर से वर मांगते हैं-

''दीजिये वर हर समय हम देश सेवा रत रहें,
देशहित दुख के प्रहारों को सुमन सम हम सहें,
टल जायं अर्बुद विन्ध्य हिमगिरि पर न हम पीछे रहें,
कट जायं तिल-तिल मुदित हो सन्मार्ग पर जिस पर रहें।''

पथिक जी ने एक झंडा गीत लिखा था, जिसे स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान कांग्रेस की सभाओं व जलसे-जुलूसों में गाया जाता था।[20] यह गीत इस प्रकार था-

प्राण मित्रों, भले ही गंवाना,
पर न झंडा, यह नीचे झुकाना,
तीन रंगा यह झंडा हमारा,
बीच चर्खा चमकता सितारा।

पथिक जी ने उर्दू में भी कविताएं लिखीं। एक बानगी देखिए-

हां वादिये जुल्मत का हो सकता न मैं हामी।
कहता हूँ सच कि झूठ की मुझमें नहीं हैं खूं।
मैं चाहता हूं सल्तनत न जिसमें जब्र हो।

खुदगर्ज हो न खून, नहीं जंगों जंगजू।

पथिक जी की कर्मभूमि राजस्थान रही। राजस्थान की जनता में देशप्रेम और आजादी की ललक पैदा करने के लिए उन्होंने राजस्थानी भाषा में बहुत से गीत और कविताओं की भी रचना की। एक राजस्थानी गीत में पथिक जी इस तरह जनता का उत्साहवर्धन करते हैं-

लहरावेगो, लहरावेगो, झंडो यो करसाणा को।
घर महला पैं, मींदरा पै, कोट किला पै, भंडारा पै।
गाँव गली में, बाजारां पै, पुर द्वारा पै, दीवारां पै।
यो हल मंडित ध्वज निशान है, करसां का अरमाना को।

पथिक जी ने गद्य में बहुत से साहित्य की रचना की। जेल के दौरान न्यायालय में दिया उनका लम्बा बयान एक उच्च कोटि का साहित्यिक निबंध है। 'पथिक प्रमोद' कहानियों का संग्रह है। 'सुखिया सुरेश' नाटक है। अंग्रेजी में उन्होंने 'व्हाट आर इण्डियन स्टेट्स' नामक पुस्तक लिखी। टालस्टाय और प्रिंस कोपाटकिन की अंग्रेजी पुस्तकों के हिन्दी में अनुवाद किये। इनके अलावा इतिहास, राजनीति, आलोचना, चिकित्सा, धर्म, अध्यात्म, हास्य और व्यंग्य पर पुस्तकें लिखीं।

'पथिक प्रमोद' विजय सिंह पथिक द्वारा लिखित कहानियों का संग्रह है। इसमें आठ कहानी संग्रहीत हैं। इनकी कहानियों में एक क्रान्तिकारी सुधारक की भावनाएं अभिव्यक्त हुई हैं। उन्होंने सड़ी गली और दकियानूसी समाज व्यवस्था के स्थान पर न्याय, श्रम, सरलता, सादगी, प्रेम और सहानुभूति पर आधारित समाज रचना की कल्पना की और उसे साकार करने के लिए प्रयत्न किया। उन्होंने साहित्य को इसी प्रयास का माध्यम बनाया। उन्होंने जहां यथार्थ का चित्रण किया है, वहीं आदर्श को अपनी दृष्टि से क़भी ओझल नहीं होने दिया है।

पहली कहानी 'स्वर्ग में राज्य सत्ता' में पथिक जी ने पूँजीवाद से उत्पन्न दोषों का चित्रण किया है। उन्होंने कहानी के माध्यम से यह दर्शाया है कि धन और राज्य लिप्सा ने किस तरह स्वर्ग में भी बुराइयाँ पैदा कर दीं। दूसरी कहानी 'सहचरी' नारी सशक्तीकरण और स्वालम्बन का संदेश देती है। पथिक जी ने इस कहानी में यह समझाया है कि स्त्री शिक्षित और स्वालम्बी हो तो वह पुरुष की तरक्की में रोड़ा नहीं बल्कि सहायक होती है। तीसरी कहानी 'उच्चता बनाम नीचता' समाज में व्याप्त जांति-पांति के कोढ़ पर करारा प्रहार है। कहानी का संदेश है कि विद्वान और बहादुर व्यक्ति किसी भी जाति में पैदा हो सकते हैं। मनुष्य जाति से नहीं बल्कि कर्म से छोटा-बड़ा होता है। 'वीर पूजा' वीरता की पराकाष्ठा की कहानी है। कहानी का नायक देवराज गडरिया सिर कटने के बाद भी जिस तरह दुश्मन की सेना को मारता रहता है और विजय प्राप्त करके उसी हालत में अपने घर तक पहुँच जाता है, हिन्दी साहित्य में

वीरता की ऐसी दूसरी मिसाल मिलना मुश्किल है।

'हरिदास' एक ऐतिहासिक कहानी है। यह कहानी हिन्दु-मुस्लिम एकता की प्रेरणा देती है। हिन्दुओं का नेता हरिदास जब अपनी जान पर खेलकर नवाब की सेना से अपने प्रतिद्वन्दी दिलावर खां की पत्नी और बेटी को छुड़ाता है और दिलावर खां के भी प्राण बचाता है तो दोनों पगड़ी बदलकर यार बन जाते हैं। छठी कहानी 'विवाह या व्यापार' तत्कालीन समाज में विवाह के नाम पर बेटियों को बेचने की कुप्रथा के दुश्परिणामों को बताती है। स्मरण रहे कि पथिक जी के समय में राजस्थान में बेटियों को बेचने की कुप्रथा आम थी। पथिक जी ने इस कुप्रथा के खिलाफ जन-जागरण अभियान चलाया था। सातवीं कहानी 'अनुपम त्याग' महाभारत की कथा पर आधारित है। इसमें भीष्म द्वारा अपने पिता शान्तनु की खुशी के लिए राज्य का उत्तराधिकार छोड़ने और आजीवन अविवाहित रहने की कहानी कही गई है। आठवीं और अंतिम कहानी 'अबला का बल' यह संदेश देती हैं कि यदि स्त्री ठान ले तो वह राह से भटके पुरुष को सही रास्ते पर ला सकती है।

'पथिक विनोद' पथिक जी की फुटकर कविताओं का संग्रह है। ये कविताएं अलग-अलग समय पर अलग-अलग विषयों पर लिखी गयी हैं। इनमें पथिक जी की काव्य प्रतिभा का पता चलता है। संग्रह के प्रारम्भ में ब्रह्म वंदना, मातृ भूमि वंदना, सरस्वती वंदना, गणेश वंदना, गणपति वंदना, विष्णु वंदना और सूर्य वंदना दी गई है। मातृभूमि वंदना की इन पंक्तियों में कवि की प्रतिभा देखिये-

सिन्धु को साड़ी बना परिधान है जिसने किया।
स्तन सदृश जिसने पहाड़ों को हृदय पर है लिया।
है सूर्य सा सौभाग्य बिन्दु ललाट में जिसके लगा।
है शून्य सा सुवितान जिसके अति मनोहर जगमगा।
जिसका अधीश्वर विष्णु है जो सब सुखों की धाम है।
उस शस्य श्यामल मातृभू को बार-बार प्रणाम है।

गुरु वंदना में गुरु की महिमा का वर्णन पथिक जी निम्न प्रकार करते हैं-

गुरुदेव ब्रह्मा, विष्णु है, गुरु ही सुरेश, महेश है।
गुरु ज्ञानरुप गणेश है, पर ब्रह्म है, अखिलेश है।
गुरु की कृपा से ही हुआ हमको सुपथ का ज्ञान है।
उनकी दया से ही हुई अखिलेश की पहचान है।

जैसा कि विदित है कि पथिक जी की कर्मभूमि राजस्थान रही। वे राजस्थान के जनक माने जाते हैं। सर्वप्रथम उन्होंने ही यह विचार प्रस्तुत किया था कि राजपूताने की छोटी-छोटी रियासतों को मिलाकर एक प्रदेश बनना चाहिए और उसका नाम राजस्थान हो। उन्होंने राजस्थान का राष्ट्रगीत भी लिखा, जो इस प्रकार है-

अजित, ललित, हरित, स्रवित, द्रवित, शान्ति पुंज।
प्रकृति प्रथित, सुमन ग्रथित, अमित गिरि, निकुंज।
गहन वनों से अभेद्य, सहज ही अथक, अक्लेद्य।
स्थर्य, धैर्य, वीर्य, शौर्य के विलास स्थान।
नमो राजस्थान।।

पथिक जी एक सच्चे देशभक्त और राष्ट्रभक्त थे किन्तु उनकी दृष्टि संकुचित न होकर विश्वव्यापी थी। वे पूरे विश्व को परिवार की तरह देखते थे और पूरे विश्व में शान्ति-सदभाव चाहते थे। इसी के दृष्टिगत उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय प्रार्थना लिखी-

आवें प्रभु फिर वे सौख्य साज।
फिर हो भूतल पर प्रेम राज्य।।
रहे विश्व के मानव सारे मिल कर बंधु समान।
जनतंत्रों के पुष्पों का यह बने विश्व-उद्यान।।

पथिक जी का राष्ट्रवाद भी अंधराष्ट्रवाद नहीं था। उनके लिए जनता प्रथम थी। जनहित ही राष्ट्रहित था। वे सच्चे लोकतंत्र के समर्थक थे। उनके लोकतंत्र की कल्पना इस छंद में देखने को मिलती है-

हर एक गृह, ग्राम, नगर, प्रदेश, प्रांत
अपना प्रबंध करने का अधिकारी हो।
सत्य, सच्चरित्रता, सहायता पड़ोसियों की
रुढ़ि हो समाज की, न कोई अविचारी हो।
स्वार्थ, छल, हिंसा, प्रतिहिंसा का न नाम रहे
प्रेम-पाश बंधा हर एक नर नारी हो।।

पथिक जी की कविताओं में साम्प्रदायिक सद्भाव, धर्मनिरपेक्षता और सर्वधर्म समभाव के संदेश जगह-जगह मिलते हैं, उदाहरण देखिये-

तुम अज खाओ, वे गो खावें;
धर्म छिपा बेपीरी में।
आत्मा तो है सम सब ही में
क्या कुंजर क्या कीरी में।।

पथिक जी ने राष्ट्रीय झंडे की आरती भी लिखी है जो इस प्रकार है-

ज्योति चक्रधारी, जय जयति चक्रधारी।
जय राष्ट्रीय विजय ध्वज, भारत जयकारी।।

महात्मा गांधी ने जब स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात किया और घर-घर में चर्खे पर सूत कातकर हाथ के बने खादी वस्त्रों को पहनने का आहवान किया तो पथिक जी ने राजस्थान में इस आन्दोलन का खूब प्रचार किया। इसके समर्थन में उन्होंने चर्खा गीत लिखा-

मत तुच्छ बताओ, मत हँसी उड़ाओ,
चरखा है चक्र भगवान का।
चरखा जहां सती के हाथों में नित चक्कर खाता,
वहां रोग दारिद्रय न भूले भी है पैर बढ़ाता।। रे मत०
वस्त्र विदेशी कृत्या से यह पूंजी खरी हमारी,
बच सकती है तभी जब रहे चरखा चलना जारी।। रे मत०
चरखा ही है सत का रक्षक जहां सदा चलता है,
उस ही थल में बिना परिश्रम सत्य-सुमन खिलता है।। रे मत०
यज्ञ न करके खादी पहने चरखा नित्य चलावे,
तो निश्चय ही पथिक यज्ञ करने के सम फल पावे।। रे मत०

पथिक जी आध्यात्मिक पुरुष भी थे। उन्होंने जीवन की नश्वरता व क्षणभंगुरता का उपदेश देती कविताऐं भी लिखीं। एक बानगी देखिये-

क्या धन दौलत, क्या सुंदरता, क्या राज्य हुकुम नौकर चाकर,
क्या सिंहासन, क्या छत्र चंवर, क्या मित्र कुटुम्बी, क्या लश्कर।
मरते दम कोई चार कदम भी तेरे साथ न जावेंगे,
उलटे अपने पापों का भी तुझको दायी ठहरावेंगे।।

पथिक जी की कविताओं में अन्योक्ति और वक्रोक्ति के उदाहरण भी भरपूर मिलते हैं। उन्होंने समसामयिक विषयों पर चुटीले व्यंग्य अपनी कविताओं में किये हैं। एक उदाहरण देखिये-

गद्दी पर बैठे गधे, श्वान बने दीवान,
बढ़ा खच्चरों का अमल, घोड़ों का अपमान।
घोड़ों का अपमान, गधी ने पहने मोती,
बोरे ढोने लगी अश्विनी, हथिनी रोती।।
पथिक नहीं कब गधा-राज्य में गज दुख पाते,
ग्वाल शाल को भी है आसन बना बिछाते।।

व्यंग्य के साथ हास्य का पुट भी पथिक जी की कविताओं में यत्र-तत्र देखने को मिलता है-

क्या कारण है आपके, सिर पर एक न बाल?

रे देखा है सड़क पर, उगता कहीं पयाल?

पथिक जी जातिवाद के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने इसके उन्मूलन के लिए सामूहिक भोज और अन्तरजातीय विवाह जैसे अभियान भी चलाये थे। छुआ-छूत को वे ढ़ोंग और कलंक मानते थे। उनका एक छंद देखिये-

आवे मन्दिर मध्य तक साहब लोग सबूट।
मुस्लिम जन के लिए भी दे देंगे हम छूट।
दे देंगे हम छूट, पार्टियों में जावेंगे।
मार्जार उच्छिष्ट दूध, घृत भी खावेंगे।
पर अछूत को हरि दर्शन, छूना अनर्थ है।
क्यों? हिन्दू हैं! शुद्धि यत्न कुछ? यत्न व्यर्थ है।

उन्होंने छोटे-छोटे विषयों पर व्यंग्यपरक और उपदेशात्मक दोहे भी काफी संख्या में लिखे। ऐसे ही कुछ चुनिंदा दोहे यहां प्रस्तुत हैं-

भस्म रमाये जो कहीं, होते जन गुण युक्त।
तो न अवा में लोट क्यों, गर्दभ बनते मुक्त।

--

ऊँचे थल पर बैठ जो, जन बन सकते उच्च।
तो न बन सकी उच्च क्यों, पथिक उष्ट्र की पुच्छ।

--

मुछमुण्डे जब बन गये, जनपद के सरदार।
क्यों न चले तब हिन्द में, गुण्डों की तलवार।

--

पर्दा मति पर पड़ गया, रह रह पर्दे बीच।
री अब तो जागो, उठो, सीस खड़ी है मीच।

--

भक्ति देखती है कहां, ऊँच-नीच के भेद।
नन्द कबीरा तर गये, बिना जनेउ वेद।

कविता संग्रह पथिक विनोद में पृष्ठ संख्या 110 से 112 तक पथिक जी की वे कविताऐं संग्रहीत हैं, जिनमें उन्होंने अच्छे राज्य, अच्छी प्रजा, अच्छे क्षत्रिय, अच्छे वैश्य, अच्छे ब्राह्मण, अच्छे साधु, अच्छे वीर, अच्छे सेवक, आदर्श नरेश और छात्र के लक्षण बताये हैं। वहीं पृष्ठ संख्या 112 से 115 तक कुब्राह्मण, कुसाधु, कुवैश्य, कुराज्य, मूर्ख नौकर, मूर्ख माँ-बाप, भ्रष्ट विवाह, ओछे जन और कुकवि के लक्षण बताये हैं। कुछ उदाहरण देखिये-

कुब्राह्मण

जाने धर्म ही न पहचाने कर्मकाण्ड ही को।
पढ़े नहीं, तीन तार कंठ लटकाये हैं।
भांग, भीख, भण्डता, स्वभूषण बतावें, भूत
पूजे, झूठ बोले, व्यर्थ तिलक लगाये हैं।
मन के मलीन, तप-तेजहीन, क्षीण तन
छूआछूत ही से निज उच्चता बनाये हैं।
झूठे ग्रह-गोचर लगा गरीब ग्रामियों को
ठगें, आज ऐसे द्विज देश को डुबाये हैं।

कुसाधु

बैल के हैं बाप बुद्धि, विज्ञता विवेचना में,
पाढ़े हैं पढ़ाई में तदपि जटाधारी हैं।
बिना श्रम खाते, शरमाते भूल भी न कभी
गुणहीन तो भी बने मान अधिकारी हैं।

कुराज्य

डाकुओं की भांति छीन लेता है कमाई सारी
कभी न प्रजा के हितों में मन लगाता है।
प्रकृत स्वतंत्रता प्रजा की छीन चाटुकार
गणों को प्रजा के भाग्यविधाता बनाता है।

मूर्ख माँ-बाप

सन्तति बढाये जा रहे हैं शूकरों की भांति
यद्यपि न योग्य एक को भी बना पाते हैं।
जिन्हें पढ़ाते हैं उनको भी पढ़ाई का ध्येय
कूट कला द्वारा द्रव्य कमाना बताते हैं।

पथिक जी ने एक कविता अपने बारे में भी लिखी। यह कविता 'पथिक विनोद' में अंतिम कविता के रुप में संग्रहीत है-

प्रियजन करना याद हमारी।
नहीं धनाढ्य, गुणज्ञ, विज्ञ सम, पर गिन प्रेम भिखारी।
जिसे गर्व था नहीं लेखनी का न काव्य कृतियों का
मात्र गर्व था निज मित्रों की प्रेम भरी स्मृतियों का
रहा सदा जो प्रेम पुजारी ।1 ।
जिसके मन में भरा हुआ था सब प्रति प्रेम अपार
रण में भी न कभी था जिसने किया प्रेमहत वार।
यदपि न समझे यह अधिकारी ।2 ।

जिसने किया न कभी व्यक्तिगत विद्वेष का प्रतिकार।
सदा प्रयत्न किया द्वेषों प्रति भी रखने का प्यार।
यद्यपि था दोषों की क्यारी ।3।
जो उपवन, कारा, महलों, छप्पर, गिरी, वन, शमशान।
जहां रहा, करता था मित्रों, मातृभूमि का ध्यान।
तज गृह-कुल की चिन्ता सारी ।4।
जिसने जन्म ग्राम में लेकर जग से प्रेम किया था।
दलित त्राण हित शासक दल से रण का नियम लिया था।
जिसको थी स्वतंत्रता प्यारी ।5।
जो था पथिक, पथिक सम रहकर गया ठिकाने ठेठ।
इस सराय में किया लिखा जो वह कर इसकी भेंट।
साथ लिये बस याद तुम्हारी ।6।

सन्दर्भ व टिप्पणी

19. विजय सिंह पथिक स्मृति ग्रन्थ - सुमनेश जोशी पृ०सं० 213
20. विजय सिंह पथिक स्मृति ग्रन्थ - सुमनेश जोशी पृ०सं० 251

पथिक - साहित्य में प्रगतिशीलता

विजय सिंह पथिक की कहानियों और नाटकों में प्रगतिशीलता के तत्व भरपूर मात्रा में मिलते हैं। हिन्दी साहित्य में जो प्रगतिशीलता की धारा है और उसके जो लक्षण आलोचकों द्वारा बताये गये हैं, पथिक जी की कहानियां और नाटक उस कसौटी पर पूरी तरह खरे उतरते हैं। विजय सिंह पथिक स्वयं समाजवादी विचारधारा के पैरोकार थे। राजनीति में जो समाजवाद है, साहित्य में वही प्रगतिशीलता है। पथिक जी ने जीवन भर समाजवादी मूल्यों के लिए संघर्ष किया। यही मूल्य उनके साहित्य और विशेषकर उनकी कहानियों में दृष्टिगोचर होते हैं।

1. **पूंजीवाद का विरोध** - पथिक जी की कहानियों में पूंजीवाद और उससे उत्पन्न होने वाले दोषों को सफलतापूर्वक उभारा गया है। पथिक जी मानते हैं कि पूंजीवाद अनेक बुराइयों की जड़ है। पथिक प्रमोद की प्रथम कहानी 'स्वर्ग में राज्य सत्ता' असल में पूंजीवाद के विरोध की ही कहानी है। पथिक जी का मानना है कि जहां पूंजीवाद नहीं, वहाँ राज्य सत्ता का स्थापित होना भी असम्भव है। रईसजादा सुरलोक में पहुंचने के बाद सोचता है- "यहाँ राज्य किस प्रकार स्थापित हो। इन लोगों के नियमों में तो कहीं गुंजाइश ही नहीं। इनकी आवश्यकता ही दो बातों में मर्यादित है। कन्द-मूल, फल और बिना सिले कपड़े के दो टुकड़े। और इन दोनों की पूर्ति ये स्वयं कर लेते हैं। न इनमें चढ़ा-बढ़ी का रोग है, न ऊँच-नींच का। न सुख साधनों का, न धन संग्रह का। ऐसी स्थिति में ये तीसरी शक्ति को मान कैसे दे सकते हैं?"

उपभोक्तावाद की वृद्धि से ही पूंजीवाद पनपता है। पथिक जी सुरबाला के मुख से उपभोक्तावाद का विरोध इन शब्दों में कराते हैं- "हम लोग तो अच्छा खाना-पहनना उसे समझते हैं, जिससे स्वास्थ्य अच्छा रहे, आयु बढ़े, शरीर सुरक्षित रहे और ये बातें हमारे वर्तमान खाने-पहनने से पूरी हो जाती हैं।"

रईसजादा जब सुरबालाओं को रेशम का रुमाल दिखाकर आकर्षित करना चाहता है और बताता है कि किस तरह रेशम के कीड़ों को उबाल कर यह कपड़ा बनता है तो सुरबालाओं की प्रतिक्रिया गौरतलब है- "सुनकर सुरबालाओं के होश उड़ गये। वे चिल्ला उठीं-इतनी हिंसा! इतने से रुमाल और व्यर्थ सुख के लिए इतने सारे प्राणियों का नाश!"

रईसजादा जब सुरबालाओं को बताता है कि उसके देश में तो सब चीज बेची जाती हैं- विद्या, पुस्तकें, कविता, औषधियाँ, भूमि, मकान, जंगल, पहाड़, मोती, रत्न सब, तब इसकी उन पर क्या प्रतिक्रिया होती है, देखिये-

सुरबालाओं के तो मुंह खुले के खुले रह गये। वे आश्चर्य में डूब गईं। कहने

लगीं- "कैसा विचित्र देश है! वहाँ लोग ईश्वर और प्रकृति की दी हुई और बनाई हुई चीजों को भी बेचते हैं। उन पर उनका क्या अधिकार है?"

कहानी के अंत में लेखक पूंजीवाद को अनैतिक और अधार्मिक बताते हुए कहता है- "सुई के छेद में से ऊँट भले ही निकल जाय, धनिक स्वर्ग में नहीं घुस सकते।"

पथिक जी के नाटक सुखिया सुरेश में भी पूंजीवाद का ऐसा ही विरोध देखने को मिलता है। प्रथम अंक के पहले ही दृश्य में भूपाल सिंह नामक पात्र पूंजीवाद और औद्योगिकीकरण से होने वाले नुकसान इस तरह बताता है- "पहले तो दस बेकार होंगे और एक को काम मिलेगा। बाकी नौ लाचार होकर जुर्म और बेजा कामों पर कमर बांधेगे। झूठ, छल और ठगई बढ़ेगी। दूसरे जिन्हें काम मिलेगा, वे भी आजाद धंधे छोड़कर गुलाम बन जायेंगे और गुलामी से चरित्र बिगड़ना निश्चित ही है। तीसरे वे अपने पुराने धंधों का ज्ञान और साधन खो बैठेंगे। फिर मिल-कारखाने तो जिस दिन मुनाफा कम हुआ, बन्द हो जायेंगे। तब इनके लिए जुर्मों के सिवाय क्या काम रहेगा?"

दूसरे अंक के तीसरे दृश्य में नाटक का नायक सुरेश पूंजीवाद की सही परिभाषा बताते हुए कहता है- "फिर बड़े लोग, बड़े तो छोटों से पैसा खींच-खींच कर ही बन रहे हैं न?"

2. **सामंतवाद का विरोध** - पथिक जी के नाटक और कहानियों में सामंती व्यवस्था का भी व्यापक विरोध देखने को मिलता है। 'पथिक प्रमोद' की पहली कहानी 'स्वर्ग में राज्य सत्ता' में सामंतों द्वारा बेगार लेने का विरोध इन शब्दों में किया गया है- "बड़ों को भगवान ने दूसरों की कमाई पर जीने को बनाया होता तो वह उन्हें गरीबों के समान हाथ पैर क्यों देता?"

कहानी 'उच्चता बनाम नीचता' में कुम्हारी और उसके बेटे की बातचीत में सामंती व्यवस्था का जुल्म प्रकट होता है-

"और अपन कुम्हार का काम छोड़ दें तो?"

"छोड़ने कौन देता है बेटा!"

"क्यों इसमें भी जबरदस्ती होती है क्या?"

"हां बेटा! सुना नहीं उस दिन रुपा चमार ने मरे जानवर खींचना छोड़ दिया तो सबने मिलकर आकाश-पाताल एक कर दिया। बिचारे पर मार पड़ी सो तो पड़ी, कैद भी कर दिया गया और अंत में फिर वही काम करने पर छुटकारा पा सका।"

'विवाह या व्यापार' कहानी में पथिक जी ने सामंतवाद पर इन शब्दों में प्रहार किया है- "राजपूतों में जाति की छुटाई-बड़ाई सम्पत्ति पर निर्भर है। आचरण में रावण का गुरु भी सम्पत्ति की बदौलत देवता बन जाता है और धनहीन वृहस्पति के समान गुणज्ञ होने पर भी हल्का गिना जाता है।"

नाटक सुखिया-सुरेश के प्रथम अंक के छठे दृश्य में सुखिया हिन्दू समाज की सामंती व्यवस्था को धिक्कारते हुए कहती हैं- "ओफ! हिन्दू जाति! ऋषि संतान, तेरा

इतना पतन? हिन्दू कहलाने वालों का हिन्दुओं के साथ यह व्यवहार? प्रजा रक्षक बनने वालों की यह दशा? आर्य-संतानों के राज्यों में यह नर्क-लीला? तभी तो इन राज्यों की यह दशा है। तभी तो नरेश बनकर भी इन्हें गुलामी भोगनी पड़ रही है। तभी तो बाइस करोड़ होकर भी हिन्दू पददलित हो रहे हैं। अरे हिन्दुओं! कुलीनों! नरेशों! अपने ऊपर दया करो! अपने कृत्यों पर शरमाओ! अपने इन पापों से भय खाओ! वरना तुम्हारे ये पाप तुम्हारा नाश कर देंगे। तुम्हारी नीचता ही तुम्हे मिट्टी में मिला देगी।''

3. **जातिवाद का विरोध** – पथिक जी जातिवाद के घोर विरोधी थे और जाति व्यवस्था को समाज का कोढ़ समझते थे। पूछने पर भी वे कभी अपनी जाति नहीं बताते थे। यही कारण है कि उनकी कर्मस्थली राजस्थान में आज तक उनकी जाति को लेकर भ्रम है। उन्होंने स्वयं अंतरजातीय विवाह किया था। उनके साहित्य में भी जगह-जगह जाति व्यवस्था सम्बन्धी उनके विचार मुखर हुए हैं। कहानी 'उच्चता बनाम नीचता' जाति प्रथा के अनौचित्य को ही प्रकट करती है। इस कहानी में मास्टर रामलाल और पंडित जी के बीच बातचीत का एक अंश देखिये-

पंडित जी बोले- ''किन्तु तुम भी कैसे आदमी हो ? शुद्र को पढ़ाते हो! भला कहीं शूद्र भी पढ़ सकता है! यह तो बालू में से तेल निकालना है।''

मास्टर बोला- ''इसमें क्या है पंडित जी! पढ़ना तो सबके लिए अच्छा ही है।''

पंडित बोले- ''अच्छा है, किन्तु मैं कहता हूँ कि शूद्र पढ़ ही नहीं सकता।''

''क्यों?''

''इसलिए कि वह शूद्र है। भगवान को उसे मस्तिष्क शक्ति देनी होती तो उसे उच्च कुल में जन्म देता।''

''तो क्या उच्च कुल में पैदा हुए व्यक्ति के अतिरिक्त और कोई पढ़ ही नहीं सकता?''

''नहीं, उच्च गुणों को नीच कैसे ग्रहण कर सकता है? काक मोती कैसे खा सकता है? मोती तो हंस ही खा सकता है।''

मास्टर बोला- ''किन्तु काक और हंस तो दो भिन्न-भिन्न योनि के पक्षी हैं। कुम्हार तो मनुष्य ही है।''

पंडित जी मुह में तम्बाकू डालते हुए बोले- ''मनुष्य हो तो भी शूद्र है।''

मास्टर हंसकर बोला- ''किन्तु वह लड़का तो पुस्तकें पढ़ने लग गया है।''

पंडित जी बोले- ''संभव है किसी पूर्व जन्म के संस्कार से सीखने की शक्ति उसमें हो, किन्तु सीख गया तो वह उसका दुरुपयोग ही करेगा।''

मास्टर बोला- ''क्यों? इसका क्या ठेका है?''

''ठेका ही है भैया! हमारी बात गांठ बांध लो! शराबी को गंगा जल दोगे तो भी वह उसे मदिरा में ही मिला कर पीयेगा। इसी प्रकार शूद्र से कभी विद्या, धन और शक्ति का सदुपयोग नहीं हो सकता।''

कहानी इस तरह आगे बढ़ती है कि आगे चलकर इन पंडित जी को अपनी सोच बदलनी पड़ती है। मास्टर रामलाल के पूछने पर पंडित जी कहते हैं- "नहीं भैया रामलाल! अब मेरी सम्मति बिलकुल बदल गई है। मैं हारा तुम जीते। सच तो यह है कि अवसर दिया जाय तो सभी योग्य हो सकते हैं। आखिर कबीर, नन्ददास, रविदास, जैमिनी, बाल्मीकि इनमें से कौन जन्म से कुलीन था?"

इसी कहानी में पथिक जी ने तत्कालीन जातीय हिंसा की एक सच्ची घटना का भी उल्लेख किया है। प्रस्तुत है उसका अंश-

भगवान सिंह बोला- "यह तो न कहिए वैद्य जी। संसार में एक स्वार्थ सम्बंध ही सच्चा सम्बन्ध है। और सब सम्बन्ध झूठे हैं। उदाहरण के लिए हम स्वयं मौजूद हैं। हमारे पूर्वजों ने अलवर राज्य के लिए अपने हृदय का रक्त बहाया था। उस समय जाति की ही दुहाई देकर हमें गुर्जरों से लड़ाया था, किन्तु परिणाम क्या हुआ? जब स्वार्थ का प्रश्न आया, तब जिस तरह सिरोही और मेवाड़ में भीलों पर गोलियां चला दी गईं और उनके घरों को जला दिया गया, उसी तरह हम पर गोलियां चला दी गई और हमारे घर जला दिये गये।"

कहानी 'वीर पूजा' भी यही बताती है कि शौर्य और साहस किसी जाति की बपौती नहीं है। कहानी के नायक देवराज से सेनापति बलवन्तराय कहते हैं- "देवराज! तुम चाहे युद्ध कला न जानते हो, तुम्हारा हृदय सैनिक गुणें का मतवाला है। तुम चाहे क्षत्रिय न हो, तुम्हारे हृदय में क्षत्रिय कहलाने वालों से अधिक दृढ-संकल्प-शक्ति है। क्षत्रियत्व का आधार जाति नहीं, वीरत्व और बलिदान की शक्ति है।"

पथिक जी अंतर्जातीय विवाह और प्रेम विवाह के कट्टर समर्थक थे। कहानी 'विवाह या व्यापार' में उनके विचार खुलकर सामने आते हैं-

"किस मूर्ख ने अंतर्जातीय विवाह न करने का नियम बनाया था? किसने लड़कियों को बेचने की प्रथा चलाई थी? किसने यह नियम प्रचलित किया था कि लड़की और लड़के अपने विवाह सम्बन्ध तय करने में कुछ भी भाग न लें? अवश्य ही इन बातों को प्रचलित करने वाले मनुष्य जाति के घोर शत्रु रहे होंगे।"

पथिक जी के नाटक सुखिया-सुरेश में गाँधी जी द्वारा चलाये गये जाति विरोधी आन्दोलन का पूरा प्रभाव है। कहानी की नायिका सुखिया जब गाँधीवादी कार्यकर्ता सुरेश से मिलती है तो उनकी बातचीत का एक अंश देखिये-

सुखिया- लेकिन मैं तो चमारी हूँ भैया?

सुरेश- तो क्या हुआ सुखिया? हमारे यहाँ जन्म से ही छूत नहीं मानी जाती।

4. **साम्प्रदायिकता का विरोध** - प्रगतिशील विचारधारा रखने वाला कोई भी व्यक्ति साम्प्रदायिक और कट्टरवादी नहीं हो सकता। पथिक जी भी उदार और धर्मनिरपेक्ष सोच के व्यक्ति थे। उनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर साम्प्रदायिकता विरोध के दर्शन होते हैं। पथिक जी का मानना है कि शासक वर्ग अपने हित साधन के लिए साम्प्रदायिकता का कार्ड खेलता है। उनकी कहानी 'उच्चता बनाम नीचता' में इसे

इन शब्दों में स्पष्ट किया गया है-

गोविन्द सिंह बोला- "यह तो आज से क्या हमेशा से होता आ रहा है। बौद्धों का राज्य छीनने के लिए चालाक लोगों ने ब्राह्मण धर्म और वैष्णव धर्म की दुहाई देकर बौद्ध धर्मियों को कटवा दिया, किन्तु जब उनका राज्य हो गया तो वे ब्राह्मण और वैष्णव धर्मियों पर बौद्धों से भी अधिक अत्याचार करने लगे। इसी प्रकार हिन्दू मुसलमानों के युग में हिन्दुत्व और इस्लाम की दुहाई देकर गरीबों की शक्ति से फायदा उठाया गया।"

'हरिदास' कहानी का नायक हरिदास साम्प्रदायिक सद्भाव और हिन्दू-मुस्लिम एकता की जीती जागती तस्वीर है। कहानीकार उसका परिचय इन शब्दों में देता है- "वे अपना जीवन निर्वाह तो कृषि द्वारा करते थे और मन्दिर की आय से एक पाठशाला चलाते थे। इस पाठशाला में उर्दू, अरबी, हिन्दी और संस्कृत चारों भाषाओं की पढ़ाई की व्यवस्था थी। पढ़ने भी सब श्रेणी के लड़के आते थे। न अछूतों के लिए उसके द्वार बन्द थे और न ही मुसलमानों के लिए। यही अवस्था मन्दिर की थी। वहाँ भी दर्शनार्थ आने से वे किसी को नहीं रोकते थे। वे कहते थे- "भाई भगवान तो सबके पिता हैं। उनके दरबार में न कोई छोटा, न बड़ा, न ब्राह्मण, न शूद्र, न हिन्दू, न मुसलमान। फिर मैं रोकने वाला कौन?"

इसी कहानी का एक दृश्य ऐसा है कि मुसलमान एकत्र होकर मन्दिर को तोड़ने के लिए आ जाते हैं। हरिदास उनके सामने खड़ा हो जाता है और समझाता है- "मान लो किसी हिन्दू ने गलती की है, किन्तु इससे मन्दिर और दीन का क्या सम्बन्ध? मन्दिर तो किसी का भी हो, पाक है। आखिर इस दुनिया को बनाने वाला एक है। अलग-अलग नाम रख लेने से ही वह दूसरा नहीं हो सकता और इसलिए चाहे मस्जिद हो चाहे मन्दिर, सब उसी के इबादतगाह हैं। ऐसी हालत में क्या मन्दिर का तोड़ना मस्जिद तोड़ने के बराबर न होगा?"

हरिदास की बात का मुसलमानों पर ऐसा प्रभाव होता है कि वे यह कहते हुए वापिस चले जाते हैं- "यह तो वही बात है भाई! राम कहो या रहीम, अल्ला मियां तो एक है।"

हरिदास अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए कहता है- "मन्दिर और मस्जिद किसी एक के नहीं हुआ करते। वे ईश्वर की पूजा की जगहें हैं और इसलिए सबकी हैं। इसलिए मैं आज जिस तरह इस मन्दिर के सामने खड़ा हूँ, इसी तरह कल कोई मस्जिद को तोड़े तो उसके सामने भी खड़ा होऊँगा, क्योंकि वह भी उसी मालिक का इबादतखाना है और उसे बचाना हर इंसान का काम है।"

कहानी के आखिर में हरिदास अपनी जान पर खेलकर दिलावर खाँ की जान बचाता है। दिलावर खां उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करता है तो प्रत्युत्तर में हरिदास कहता है- "कोई कौम सारी की सारी बुरी-भली नहीं होती खां साहब। सभी में भले होते हैं और बुरे भी होते हैं। अगर हम बुराई से बचकर अच्छाई को अपनाते हैं तो कोई झगड़ा पैदा न हो। लेकिन हम कौम के नाम पर अंधे हो जाते हैं।"

नाटक 'सुखिया-सुरेश' के दूसरे अंक के तीसरे दृश्य में अनवर और अलाबख्श की बातचीत में भी यही भावना प्रकट होती है-

अनवर- तो इस हिसाब से तो ये हिन्दू, मुसलमान, ईसाई वगैरह के बखेड़े भी फिजूल हैं?

अलाबख्श- और क्या?हकीकत की नज़र से तो फिजूल ही हैं। आखिर मालिक तो एक है। एक बाप की औलाद में फिरकेबन्दी कौन अच्छी कहेगा?

अनवर- तो फिर ये लोग आपस में एक दूसरे को इतना गैर क्यों समझते हैं? क्यों दीन के नाम पर खुदा के बन्दों का खून बहाते हैं?

अलाबख्श- इसकी वजह है आम लोगों की जहालत और कुछ लोगों की बदमाशी। चालाक लोग अपना मतलब बनाने के लिए बेवकूफों को लड़ा देते हैं।

5. **धर्मान्धता का विरोध** – साम्प्रदायिकता का मूल कारण धर्मान्धता होती है। जो लोग अपने धर्म के प्रति बहुत कट्टर और अंधविश्वासी होते हैं, वे ही प्रायः साम्प्रदायिकता का शिकार होते हैं। पथिक जी ने अपने साहित्य में धर्मान्धता और कट्टरपन पर भी खूब प्रहार किये हैं। कहानी 'स्वर्ग में राज्य सत्ता' में रईसजादे और सुरबालाओं की बातचीत में धर्म के खोखलेपन का बड़ा विराट चित्र खींचा गया है-

"तो वहाँ धर्म ध्यान क्या खाक होता होगा?'" एक ने कहा।

"धर्म तो हम लोग खूब करते हैं!" रईसजादे ने कुछ अभिमान के साथ कहा।

"किस तरह करते हो?"

"हम मन्दिर बनाते हैं। उसमें एक मूर्ति रखते हैं। एक पुजारी-महन्त रखते हैं। फिर मन्दिर में हमेशा पूजा होती है और धन-सम्पत्ति भेंट किया जाता है।"

"और उस धन सम्पत्ति का क्या होता है?"

"यह पुजारी या महन्त की मर्जी पर रहती है। वह खुद भी खर्च कर सकता है और ब्राह्मणों आदि को खिलाता है।"

"किन-किन कार्यों में खर्च करता है?"

"भगवान के लिए सेवक, चपरासी, फौज, हाथी-घोड़े, पालकी सब रखने पड़ते हैं कि नहीं?"

सुरबालाऐं खिलखिला कर हंस पड़ी। कहने लगीं- "कैसे आदमी हैं! भगवान की ही चीजें एक आदमी को दे देते हैं। न उनसे किसी दुखी का दुख मिटता है, न किसी को ज्ञान मिलता है, और इसको कहते हैं धर्म।"

"तब तो वह एक प्रकार के पागलों का देश है।" एक ने कहा।

"नहीं नहीं, वह साक्षात नर्क है।" दूसरी बोली।

नाटक सुखिया-सुरेश के दूसरे अंक के दूसरे दृश्य में अंधविश्वास पर गहरी चोट की गई है। स्वच्छता अभियान के तहत गाँधीजी के कार्यकर्ता देखते हैं कि गाँव के पंचायती चबूतरे पर ईंट और कूड़े का ढेर लगा है। गाँव वाले इस अंधविश्वास के कारण चबूतरे से दूर रहते हैं कि वहाँ कोई भूत रहता है, जो सांप बन कर काट लेता है। इस पर

गाँधीवादी कार्यकर्ता डॉक्टर अपने विद्यार्थियों से कहता है- "कुछ भंगियों और मजदूरों को लेकर होशियारी से इस ढेर को हटवाओ। देखो अभी इनका भूत निकलता है। न जाने हिन्दुओं के दिमाग से यह पागलपन कब दूर होगा?"

हिन्दू धर्म की संकीर्णता और छुआछूत धर्म परिवर्तन का कारण बनती है। इस ओर भी नाटक में इशारा किया गया है। एक दृश्य देखिये-

सुखदेवा- कई बार ऐसी मन में आती है कि न हो तो मुसलमान या ईसाई हो जाऊं।

सुखिया- (कुछ घबरा कर) क्यों? मुसलमान, ईसाई क्यों?

सुखदेवा- और क्यां? फिर न कोई बेगार में पकड़ेगा, न कुछ कर सकेगा। सब बराबर बैठायेंगे और इज्जत करेंगे। यहाँ शहर में बीसियों, भील, चमार, भंगी वगैरा इस झगड़े के मारे मुसलमान, ईसाई बन गये। अब वे सिपाही बने फिरते हैं।

पथिक जी हिन्दू-धर्म की बुराइयों की ओर उंगली तो उठाते हैं किन्तु धर्म-परिवर्तन के पक्ष में कतई नहीं हैं। वे चाहते हैं कि हिन्दू धर्म की बुराइयाँ दूर हों। सुखिया और सुखदेवा के संवाद में आगे वे इसे स्पष्ट करते हैं-

सुखदेवा- क्यों? जिस धर्म में पशु की तरह रहना पड़े, उसके रहने से फायदा क्या?

सुखिया- इसमें धर्म का क्या दोष स्वामी? यह तो लोगों का दोष है। भगवान की नज़र में न ऊँचा है, न नीचा है। धर्म किसे कहते हैं कि गरीब को सताओ, कुकर्म करो?

नाटक के पांचवे दृश्य में एक मियां सुखिया को धर्म परिवर्तन के लिए उकसाता है तो सुखिया उसे भी ऐसा ही जवाब देती है-

मियां- क्यों? ऐसा धर्म किस काम का, जिसमें जूते, धक्के, बेगार के सिवाय कुछ मिले ही नहीं। कोई पूछे तक नहीं। ये लोग बिल्ली का झूठा दूध पी लेते हैं। रेल में खाना खा लेते हैं। अंग्रेजों के साथ चाय पीते हैं और तुम्हे छूते तक नहीं। हमारे यहाँ देखो। कोई हो, कलमा पढ़ा और बराबर का भाई हुआ। उसी वक्त साथ खाना खा लेते हैं। एक के काम पड़े तो सब मदद करते हैं। तुम्हारे हिन्दुओं में ये बात कहां?

सुखिया- हां मियां साहब! कहते हैं हिन्दुओं में भी पहले ऐसा ही था। अब लोग पुरानी बातें भूल गये हैं। लेकिन इसलिए धर्म थोड़े ही छोड़ा जाता है।

6. **नारी सशक्तीकरण** - नारी सम्मान, समता, शिक्षा और सशक्तीकरण प्रगतिशील विचारधारा के प्रमुख तत्व है। पथिक जी के साहित्य में इसे प्रमुखता से स्थान दिया गया है। 'पथिक प्रमोद' में संकलित कहानी 'सहचरी' में स्त्री स्वावलम्बन का महत्व पथिक जी ने निम्न शब्दों में प्रकट किया है-

"स्वावलम्बी स्त्री समय-असमय पुरुष की सहायता कर सकती है। उसकी अनुपस्थिति में कुटुम्ब पोषण कर सकती है। उसका पति उसके और बच्चों के भरण-पोषण के सम्बन्ध में निश्चिन्त रह सकता है। दूसरी ओर, वह परावलम्बिनी हो तो पति के गले का बोझ ही पड़ती है।"

इस कहानी में स्त्री स्वतंत्रता का समर्थन पथिक जी ने इन शब्दों में किया है- "प्रेम तो स्वतंत्रता का ही दूसरा नाम है। जहां भय है, परतंत्रता है, बल प्रयोग है, वहाँ

प्रेम का क्या काम?"

कहानी 'विवाह या व्यापार' में स्त्री-पुरुष समानता का समर्थन करता हुआ गुलाब सिंह कहता है- "मैं ही कौन सा दूध का धुला हूं? सच तो कहती है। प्रेम तो कोई लूटमार या सौदे की वस्तु नहीं है। वह तो हृदय की वस्तु है। प्रसन्नता से ही दी ली जा सकती है। मैने या और किसी ने कब विवाह से पहले इसके मनोभाव जानने की चेष्टा की थी? कब इसका प्रेम प्राप्त करने का प्रयत्न किया था? उन्होंने पशु की तरह बेंच दिया और मैं घर ले आया। ऐसी अवस्था में मैं किस आधार पर यह चाह कर सकता हूँ कि वह पतिभक्त रहे? मेरी कठिनाइयों का ध्यान रखे?"

'विवाह या व्यापार' कहानी में मणि प्रेम विवाह के लिए अपने पिता से बगावत कर देती है। वह कहती है- "मैं नानालाल के सिवाय और किसी के साथ विवाह न करुँगी। यदि तुम मुझे दूसरी जगह दोगे तो मैं पुलिस में जाकर रिपोर्ट कर दूँगी।"

'अबला का बल' नामक कहांनी में कालिन्दी पर्दा प्रथा के खिलाफ जंग छेड़ देती है। वह कहती है- "यह सब क्यों?जब स्त्रियां पुरुषों के लिए इतनी चिन्ता नहीं करतीं तो पुरुष उनके लिए क्यों करे? जब स्त्रियां पुरुषों का विश्वास करती हैं तो पुरुष उन्हें क्यों विश्वास नहीं लेते? क्या हमें अपनी इज्जत का ख्याल नहीं?"

आखिर एक दिन ऐसा आता है कि कालिन्दी अपने पति गोविन्दलाल को ताले में बन्द कर देती है। गोविन्दलाल ने क्रोधित होकर कारण पूछा तो उत्तर मिला- " अब तुम्हे पर्दे में रहना होगा। मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं है।"

नाटक सुखिया-सुरेश के अन्तिम दृश्य में सुखिया अपनी इज्जत लूटने के लिए आये कुँवर साहब और दीवान साहब को गोली मारने का इरादा बना लेती है। अपने निर्णय को उचित ठहराते हुए वह कहती है- "मैं केवल संसार को यह दिखाना चाहती हूँ कि अबला को भी अधिक सताना अच्छा नहीं होता। सत्य के सहारे एक अबला भी बड़े-बड़े शक्तिशालियों को धूल चटा सकती है।"

नाटक के अंत में ईश्वर से प्रार्थना करती हुई सुखिया गाती है-

तिल-तिल कट जायें खड़ी भारतीय नारी,
किन्तु सत्य से न हटें रंच भी मुरारी।
है यही, अनाथ-नाथ प्रार्थना हमारी।।

7. **देश प्रेम** – विजय सिंह पथिक एक प्रखर देशभक्त और क्रान्तिकारी स्वतंत्रता सेनानी थे। उनके साहित्य और विशेषतः कविताओं में देश प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है, किन्तु उनका गद्य साहित्य भी देश प्रेम से अछूता नहीं है। 'पथिक प्रमोद' की कहानी 'वीर पूजा' के एक दृश्य में उनके उदात्त देश प्रेम के दर्शन होते हैं-

इसी समय बलवंतराय की पत्नी दोनों हाथों में तलवार लिये एक चट्टान पर आ खड़ी हुई और राजपूतों को सम्बोधन करके बोली- "तुम्हारे क्षत्रियत्व को धिक्कार है। क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती कि तुम विदेशियों का पक्ष लेकर देश बांधवों से लड़ने आये

हो? हिन्दू होकर हिन्दुओं को परतंत्र बनाने में सहायता दे रहे हो। सोचो, तुम्हारे पूर्वज तुम्हारी इन कृतियों को देख-देख कर तुम्हारे लिये क्या सोचते होंगे?''

8. **युद्ध का विरोध** – प्रगतिशील व्यक्ति कभी देश, नस्ल, धर्म, जाति, भाषा या रंग की सीमाओं में बंधकर नहीं सोचता। उसकी सोच सम्पूर्ण मानवता और सम्पूर्ण विश्व के लिए होती है। इसलिए वह युद्ध और हिंसा के खिलाफ होता है। पथिक जी के साहित्य में भी जगह-जगह युद्ध विरोधी स्वर सुनाई देते हैं। उनका खण्ड काव्य 'प्रहलाद विजय' तो युद्ध विभीषिका के खिलाफ ही लिखा गया है। उनकी कहानियों में भी युद्ध की सार्थकता पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है।

पथिक प्रमोद की पहली कहानी 'स्वर्ग में राज्य सत्ता' के एक दृश्य में युद्ध की निस्सारता पर इस तरह प्रकाश डाला गया है-

''महत्वपूर्ण कार्य तो हमारे यहाँ बहुत होते हैं। प्रायः महत्वपूर्ण बातों पर ही युद्ध हो पड़ते हैं।''

''युद्ध? यह कौन सी बला है? यह कैसे होता है?''

''तुम नहीं जानती! युद्ध सबसे महान कार्यों में से एक है। उसमें सबसे अधिक व्यय होता है। लाखों मनुष्य एकत्र होते हैं।''

''फिर?''

''फिर एक दूसरे को मारते हैं! मरते हैं।''

''मरते हैं? क्यों?'' सुरबालाओं का मानों दम घुटने लगा।

''राज्य छीनने के लिए। धन छीनने के लिए।'' रईसजादे ने कहा।

''और राज्य-धन का क्या करते हैं?''

''उससे सुख साधन बढ़ाते हैं।''

''यह हमेशा होता है? हमेशा मारते-मरते हैं?''

''नहीं, मनुष्य तो केवल युद्ध में मारते-मरते हैं। हाँ पशु हमेशा मारे जाते हैं।''

''क्यों?''

''खाने को।''

''बाप रे बाप! तब तो वह राक्षसों का देश है। तुम्हारे यहाँ यह हत्याकाण्ड महान कार्य माना जाता है?ओह! ओह!!''

वीर पूजा नामक कहानी में लेखक कहता है- ''युद्ध अपने वंश या जाति की प्रधानता और श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए नहीं, धर्म और देश की स्वतंत्रता रक्षा के लिए करना चाहिए।''

9. **गृह उद्योग को बढ़ावा** – पथिक जी गाँधी के समर्थक थे। गाँधीवादी आन्दोलन में उन्होंने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। उनके साहित्य में गाँधी जी की गृह उद्योग नीति को व्यापक प्रोत्साहन मिलता है। कहानी 'सहचरी' में अमरचन्द पहले तो कमला द्वारा संचालित गृह उद्योग का विरोध करता है किन्तु बाद में उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह कहता है-

''अब तो मैं स्वयं पहनूँगा। अब मैने समझा है कि यदि हम गृह उद्योगों से बनी वस्तुएँ न

लें तो वे चल ही नहीं सकते। फिर गृह उद्योगों से बनी वस्तुएं लेने का अर्थ है अपनी स्त्रियों की आय बढ़ाना।''

नाटक 'सुखिया-सुरेश' के पहले दृश्य में ही ग्रामोद्योग का महत्व समझाते हुए भूपाल कहता है- ''लेकिन आप समझते हैं कि इस समझदारी से कितनों का रोजगार चला जायेगा? कितने घर-धंधे नष्ट हो जायेंगे? कितने धुने, जुलाहे, लुहार, सुनार, इक्केवान, गाड़ीवान, तांगे वाले बेकार हो जायेंगे? कितनी विधवाओं का, गरीबों का और अनाथ, अपंगों का जीना मुश्किल हो जायेगा? आज कोई कताई-बुनाई से, कोई पिसाई-सिलाई से और कोई इक्के-गाड़ी चला कर अपना पेट भी भर लेते हैं और आजाद भी रहते हैं।''

इसी तरह नाटक के प्रथम अंक के चौथे दृश्य में 'मेहमान' नामक पात्र कहता है- ''हां, हां, फिर इससे रोजगार कितनों का चलता है? मिल का कपड़ा लें तो उसके रुपये एक मालदार की जेब में जाते हैं। खादी लें तो उससे कई गरीबों का पेट भरता है क्योंकि कताई-बुनाई पेट भरने के लिए गरीबों के सिवाय कोई नहीं करता।''

10. स्वच्छता को बढ़ावा – गाँधी जी के स्वच्छता अभियान को भी पथिक जी के साहित्य में महिमामंडित किया गया है। नाटक 'सुखिया-सुरेश' के दूसरे अंक के दूसरे दृश्य का एक वर्णन देखिये–

मकान मालिक- लेकिन इतने से कूड़े से क्या होता है?

डॉक्टर- क्या होता है? (अपने साथी से) जरा हटाना भाई साहब! (साथी कूड़े को सरकाता है, कुछ बिच्छू, कनखजूरे निकल कर भागते हैं) यह देखिये ये बिच्छू, कनखजूरे किसी को काटते या नहीं?

मकान मालिक- (कुछ आश्चर्यचकित होकर) हां साहब! यहाँ तो बच्चे दिन भर खेलते हैं। ये तो काटते ही। लेकिन ये कौन जानता था कि इतने से कूड़े में भी ये बला होगी?

डॉक्टर - इसीलिए तो घर में जरा सा भी कूड़ा न रखना चाहिए। और उसमें लगता क्या है?दो कदम आगे जाकर ढोल में डाल दिया।

इसी दृश्य में डॉक्टर दूसरे घर में जाकर देखता है कि वहाँ कई बीमार हैं। घर वाले बीमारी का कारण भूत-प्रेत को समझते हैं। डॉक्टर और घर की वृद्धा के मध्य बातचीत का अंश देखिये-

वृद्धा- क्या बीमारी है भइया, ये तो कोई भूत प्रेत की माया है।

डॉक्टर- भूत नहीं है मां जी, मलेरिया है। (इधर-उधर देख कर) अच्छा मांजी, तुम्हारे यहाँ घर के सब कुल्ला-दांतून यहीं करते हैं क्या?

वृद्धा- हां भैया, यहीं करते हैं।

डॉक्टर- तो बस, इस घर का भूत इसी में रहता है। देखो तो कितनी मिट्टी, कूड़ा, कोयले, दांतून के टुकड़े वगैरह पड़े है? पूरा एक बालिश्त ऊँचा है।

वृद्धा- ऊँह! इससे क्या होता है?

डॉक्टर- इससे तो अनर्थ हो जाता है मां जी। (विद्यार्थी से) लाना भाई जरा फावड़ा। (विद्यार्थी फावड़ा लाकर देता है) देखो। देखो मां जी। ये छोटे-छोटे हजारों कीड़े हैं कि

नहीं?

वृद्धा- हां भैया, हैं तो सही।

डॉक्टर- बस ये ही बीमारी पैदा करते हैं। आप ऐसी जगहों को धुलवा कर साफ रखो। फिर देखो 15 दिन में बीमारी भाग जाती है कि नहीं।

‘प्रह्लाद विजय’ और पथिक जी का राजनीतिक दर्शन

विजय सिंह पथिक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। उनके अंदर उच्च कोटि का साहित्यकार भी मौजूद था। उनके द्वारा रचित साहित्यिक कृतियों में उनकी इस प्रतिभा के दर्शन होते हैं। स्वतंत्रता संग्राम और किसान आन्दोलनों के दौरान वे ‘अनगढ़’ और ‘राष्ट्रीय पथिक’ नाम से कविताएं किया करते थे। पथिक जी की कविताएं जहां देश की जनता को प्रेरणा देने वाली और उनमें जोश भरने वाली होती थीं वहीं साहित्य की कसौटी पर भी उच्च कोटि की होती थीं। लेकिन उनका कवि चरम स्थिति को प्राप्त हुआ ‘प्रहलाद विजय’ में। ‘प्रहलाद विजय’ की रचना उदयपुर जेल में हुई। बेगूं किसान सत्याग्रह के दौरान गिरफ्तारी के बाद पथिक जी को 1923 से 1927 तक करीब पांच वर्ष उदयपुर राज्य की जेल में कैद रखा गया था। उनका ज्यादातर साहित्य इसी दौरान रचा गया। ‘प्रहलाद विजय’ की रचना भी इसी अवधि में हुई।

‘प्रहलाद विजय’ एक उत्कृष्ट कोटि की साहित्यिक रचना है। भाषा, भाव, विचार, शैली, छंद विधान, कथा और कथ्य हर दृष्टि से यह सफल कृति है, किन्तु साहित्यकारों, प्रकाशकों और आलोचकों की दृष्टि से सर्वथा ओझल रही है। इस कृति का प्रकाशन इसकी रचना के करीब दो दशक बाद पथिक जी की मृत्यु उपरान्त उनके मित्रों, शुभचिन्तकों और समर्थकों द्वारा 1961 ई० में कराया जा सका। 2005 ई० में विजय सिंह पथिक शोध संस्थान दादरी (उ०प्र०) द्वारा इसका पुनर्प्रकाशन कराया गया। साहित्य की मुख्य धारा से यह अभी तक अलग है। इस रचना को यदि आलोचकों द्वारा उचित महत्व दिया जाए तो यह मैथिलीशरण गुप्त की ‘साकेत’, रामधारी सिंह दिनकर की ‘उर्वशी’, हरिऔध की ‘प्रिय प्रवास’ और जयशंकर प्रसाद की ‘कामायनी’ के मुकाबले की कृति सिद्ध होगी। खड़ी बोली का महाकाव्य कहे जाने लायक सारे तत्व पथिक जी की ‘प्रहलाद विजय’ में मौजूद हैं।

‘प्रहलाद विजय’ एक काव्य रुपक है। सुविख्यात पौराणिक कथा सुर-असुर संग्राम को इस खण्ड काव्य का आधार बनाया गया है, लेकिन कथा को इस शानदार तरीके से कहा गया है कि पाठक को यह सुन कर सुरासुर संग्राम की कथा न लगकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की कमेंटरी लगने लगती है। विजय सिंह पथिक जी ने मुख्य कथा को कहीं बाधित न होने देते हुए जिस तरह के दृश्य और उपदेशात्मक वर्णन व संवाद बीच-बीच में पिरोये हैं, वे कवि की प्रतिभा का लोहा मानने को विवश कर देते हैं। हिरण्यकश्यप का देवलोक पर आक्रमण, निर्दोष नागरिकों पर अत्याचार, लूट-खसोट, भयानक संग्राम, सुर पक्ष का अहिंसा व सत्याग्रह की नीति का समर्थन और अंत में असुर पक्ष की हार व सुरलोक से पलायन सब कुछ ऐसा लगता है कि यह भारतीय स्वाधीनता सेनानियों के अंग्रेजों से संघर्ष की कहानी है। इस कथा के बीच-बीच में अवसर पाते ही जिस तरह पथिक जी ने अहिंसा, प्रेम, सत्याग्रह, विश्वमैत्री, साम्राज्यवाद विरोध,

युद्धविरोध, सामाजिक समरसता, नारी समानता और उच्च मानवीय आदर्शों की गरिमा स्थापित की है, वह यह दर्शाता है कि इस खण्ड काव्य की रचना किसी उद्देश्य से ही की गई है। सही अर्थों में 'प्रहलाद विजय' पथिक जी के राजनीतिक विचारों का प्रतिनिधि काव्य है।

काव्य का प्रारम्भ पथिक जी ने प्रकृति चित्रण से किया है। 'प्रहलाद विजय' के प्रथम छंद का ही काव्य सौन्दर्य देखिये-

"ग्रीष्म का प्रभात था, प्रपातपूर्ण पर्वतों से
घिरी इन्द्रपुरी थी ज्यों रति इठला रही;
शची भवनों के चारों ओर लगे उपवनों में
थी मन्द गन्धित समीर लहरा रही !
अरुण के प्रेम-पगी सुमुखी प्रभा थी सुप्त
शिशु-सुमनों के कंठ गुदगुदी चला रही;
भीने-भीने कर कुसुमों के मुख फेर-फेर
आप हंसती थी, औ थी विश्व को हँसा रही !"

सुरलोक के प्रकृति चित्रण के बाद कवि अपनी कथा को आगे बढ़ाता है। असुरपति हिरण्यकश्यप की सेना सुरलोक पर आक्रमण कर देती है। इस आक्रमण को अंग्रेज साम्राज्यवाद से जोड़ते हुए पराधीन भारत की स्थिति का संकेत कवि इन शब्दों में करता है-

"इस तरह कल जिस सुरसरि-कूल सुरों का था मेला जुड़ रहा;
आज है वही अनय का चिन्ह, असुर दल का झण्डा उड़ रहा !"

असुर रुपधारी साम्राज्यवादी शक्तियों के अन्याय और अत्याचार का वर्णन करने के साथ-साथ कवि इस बात का भी ख्याल रखता है कि हिंसा का जवाब हिंसा नहीं है। भारतीय दर्शन को विस्मृत न करने का आह्वान करते हुए कवि कहता है-

"रहा सुर-समाज का सदा सुनिश्चित लक्ष्य विश्व-उपकार;
विश्व में साम्य, सत्य, स्वातंत्रय, शांति को फैलाना अधिकार !"

विश्व उपकार, विश्व साम्य, विश्व बंधुत्व, सत्य और शांति का अनुयायी होते हुए भी किसी राष्ट्र को अपनी स्वतंत्रता की रक्षा अवश्य करनी चाहिए, क्योंकि स्वतंत्रता को खोकर कोई समाज जिन्दा नहीं रह सकता। कवि कहता है-

"किन्तु प्रश्न है राष्ट्र की स्वतंत्रता का आज;
जीवित रह सकता नहीं खोकर जिसे समाज !
स्वतंत्रता है प्राण सृष्टि के शुभ कर्मों की,
स्वतंत्रता है भित्ति भक्ति की, सद्धर्मों की;
स्वतंत्रता है जीवन का जीवन चेतन में,
स्वतंत्रता है शोभा की शोभा उपवन में !"

"स्वतंत्रता ही उन्नति का पथ दिखलाती है,
स्वतंत्रता ही सत्य-साधना सिखलाती है;
स्वतंत्रता है जीवन को रहणीय बनाती,
स्वतंत्रता है कर्मों को करणीय बनाती !"

स्वतंत्रता का महत्व बताते हुए कवि आगे कहता है कि स्वशासन खो देना मृत्यु के समान है-

"जो जन अथवा राष्ट्र-स्वशासन खो देते हैं,
वे जीवित ही जीवन से कर धो लेते हैं;
परवशता-विष उन्हें गिराता ही जाता है,
नीति-भ्रष्ट कर क्षुद्र दासता सिखलाता है !"

स्वतंत्रता की रक्षा के लिए कवि युवाओं से युद्ध का आहवान करता है। वह उनके वीरत्व और स्वाभिमान को ललकारते हुए कहता है-

"अतः कहो, परवशता को स्वीकार करोगे?
अथवा रण में अरि से लड़ते हुए मरोगे?
बन असुरों के दास चरण उनके धोओगे?
अथवा विजयी हो बलिवेदी पर सोओगे?"

ब्रिटिश शासन ने भारतीय सुख-शांति और समृद्धि को किस प्रकार नष्ट किया और हमारे धार्मिक-सामाजिक कार्यों तक में हस्तक्षेप किया, उसका सजीव चित्रण प्रहलाद विजय में मिलता है-

"प्रलय-वह्नि की तरह असुरदल फैल गया ग्रामों में;
एक ओर से आग लगा दी सुखमय सुरधामों में !
देव स्थान भ्रष्ट कर, धार्मिक ग्रंथ नष्ट कर डाले;
जलते हुए गृहों से शिशु, कृषि-पशु तक नहीं निकाले !"

पथिक जी क्रान्तिकारी होने के साथ-साथ सत्याग्राही और अहिंसावादी भी थे। बिजौलिया का विश्व प्रसिद्ध किसान आन्दोलन विजय सिंह पथिक ने ही चलाया था, जिसे महात्मा गाँधी ने देश के 'प्रथम सत्याग्रह' की उपाधि दी थी। सत्याग्रह के दर्शन और उसके महत्व को कवि ने निम्न पंक्तियों में समझाया है-

"अतः है विजय हमारी यही कि जीवित रहते तजें न धर्म;
बना दें बलिदानों से व्यर्थ तुम्हारा पशुबल, कौशल-कर्म !
चाहते नहीं और के उचित स्वत्व पर करना हम अधिकार;
किन्तु तजने को अपने स्वत्व भी नहीं हो सकते लाचार !
कह सभी पथ में आ डट गए, न की मरने की कुछ परवाह;
सैंकड़ों काट गिराए गए, तदपि उनका न घटा उत्साह !"

अपने विचारों को और ज्यादा स्पष्ट करते हुए पथिक जी कहते हैं-

"नहीं वीरता है, विवुधों ! वैरी का वध करने में;
है वीरत्व सत्य पर निर्भय डटे हुए मरने में !
सच्चा विजयी है न वह, जयी होकर जो आता है;
प्रत्युत वह, जो बिना झुके निज प्रण पर मिट जाता है !"

पथिक जी की दृष्टि वैश्विक दृष्टि थी। वे केवल अपने देश की स्वतंत्रता तक नहीं बल्कि विश्व शांति की सोच रखते थे। द्वितीय विश्व युद्ध में अमेरिका द्वारा जापान पर परमाणु बमों के प्रयोग के बाद दुनिया में परमाणु युद्ध रोकने और निशस्त्रीकरण की जो चर्चा चली, उसका संकेत पथिक जी ने डेढ़ दशक पूर्व रचित अपने इस काव्य में कर दिया था-

"तुम्हें है ज्ञात, पुत्र ! सुर-संघ-मध्य यह वैज्ञानिक संग्राम;
तथा वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रादि से लिया जाना रण में काम !
आत्म-रक्षार्थ और समबली के लिए भी है आपद्धर्म;
अज्ञ जन पर तो इनका वार गिना जाता है घोर कुकर्म !"

युद्ध को एक अनावश्यक और अनैतिक कार्य मानते हुए पथिक जी कहते हैं-

"युद्ध नहीं कुछ धर्म-कार्य हैं, हिंसा नहीं प्रगति है;
स्वात्रंयाश्रित सुरक्षार्थ ही बस उसकी अनुमति है !
वह भी तब जब और किसी विधि रक्षा रहे न सम्भव;
युद्ध बिना निश्चित हो जब, होना स्वातंत्रय-पराभव !"

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जो संयुक्त राष्ट्र संघ अस्तित्व में आया, 'प्रहलाद विजय' में पथिक जी द्वारा उसकी परिकल्पना देखिये-

"भिन्न-भिन्न भाषा, आकृति वाले, विभिन्न देशों के;
भिन्न-भिन्न व्यवहारों वाले, भिन्न-भिन्न वेशों के;
राज्य प्रजा सबके प्रतिनिधि, विद्वान, वीर, व्यवसायी;
सबने मिल, थी विश्व-शान्ति की नूतन नीति बनाई !"

सभी देशों के राष्ट्र प्रमुखों ने मिलकर जो नई विश्व नीति बनाई, उसका वर्णन कवि ने इन शब्दों में किया है-

"निश्चय हुआ प्रथम तो हिंसा-रण को अघ ठहराना;
पाप मानना वैज्ञानिक रण, समिध्ना-पोत बनाना !
और स्वार्थ, वाणिज्य-यन्त्र-कौशल का नाम मिटाना;
प्रकृत-संस्कृति-जीवन को ही धर्म-वेश पहनाना !
सत्य बोलना, सत्य आचरण करना और कराना;

जाति, राष्ट्र, समुदाय आदि के अनुचित भेद मिटाना !"

खण्ड काव्य की अंतिम पंक्तियों में कवि एक नये विश्व के निर्माण का चित्र प्रस्तुत करता है–

"फिर, इस द्वेष-दग्ध जग में सुख का समुद्र लहराए;
फिर, जगती पर बन्धु-भाव की विमल चन्द्रिका छाए !
फिर, मरुथल कूजित कुंजों, स्मित पुष्पों से भर जाएँ;
फिर, कोकिल 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की रागिनी सुनाएँ।
फिर, बल की पूजा उठकर हो सत्य, न्याय की अर्चा;
फिर, घर-घर में स्वार्थ छोड़ हो व्यक्ति-भक्ति की चर्चा !"

पथिक जी ने युद्ध की निस्सारता और उसके कुपरिणामों को तो इंगित किया है किन्तु साथ ही उन सैनिकों को भी सोच-समझकर किसी सेना में शामिल होने की सलाह दी है, जो युद्ध की आवश्यक सामग्री होते हैं। कवि कहता है कि शासकों या सेनापतियों की महत्वाकांक्षा के लिए सैनिकों को बिना सोचे समझे युद्ध में नहीं उतर जाना चाहिए–

"और मूर्ख ये सैनिक भी क्यों अन्धे हो मरते हैं?
क्यों औरों के कहने से ये रौरव में गिरते हैं?
अन्त समय निज कृति का फल तो ये खुद ही पायेंगे;
स्वामी कहलाने वाले तब कब आड़े आयेंगे?"

पथिक जी सैनिकों से कहते हैं कि उनका युद्ध में भाग लेना उसी स्थिति में उचित है, जब कोई अन्य विकल्प न बचा हो–

"अतः भाग लेना उसमें सैनिक को तभी उचित है;
जब वह समझ ले बिना समर के सर्वनाश निश्चित है !
या जब हो विश्वास उसे निज स्वामी का यह निश्चित;
कि वह कदापि न लेगा कोई कार्य किसी से अनुचित !"

अनावश्यक युद्ध को कपट की संज्ञा देते हुए कवि कहता है कि यह स्वामी और सेवक दोनों के लिए घातक होता है–

"अन्यथा, उदर भरने को, या धन-संग्रह करने को;
वान-सदृश चल देना जन-वध करने, खुद मरने को !
युद्ध नहीं, बटमारपना है, जघन्यतम पातक है;
स्वामी, सेवक दोनों की ही आत्मा का घातक है !"

कवि कहता है कि यदि दुष्ट शासकों को मूर्ख सिपाही उपलब्ध न हों, तो बहुत से युद्धों को टाला जा सकता है–

"फिर इन युद्धों के होने के लिए कौन है दायी?

क्यों हो युद्ध, मिले यदि दुष्टों को न विमूढ़ सिपाही?
इस विधि ये सैनिक केवल हिंसा ही नहीं कमाते;
हैं स्वतंत्र, निर्दोष जनों को परवश-दास बनाते !"

सुरासुर संग्राम के परिणाम पर दृष्टिपात करते हुए कवि यह समझाना चाहता है कि युद्धों से शासकों का कुछ नहीं बिगड़ता। आम आदमी और सैनिकों को ही युद्ध विभीषिका झेलनी पड़ती है-

"क्या बिगड़ा हिरण्यकश्यप का, क्या सेनापतियों का?
क्या बिगड़ा सुख के ठेकेदारों-कमलापतियों का?
गये सुरक्षित वे निज घरों को, मरे दरिद्र बिचारे;
इधर मरे ये, उधर मरेंगे भूखे आश्रित सारे !
हा, कितने वंशों का रवि ही अस्त हो गया होगा;
एकमात्र कितने हृदयों का रत्न खो गया होगा !"

पथिक जी ने युद्ध की वीभत्सता का बहुत ही प्रभावी चित्रण इस काव्य में प्रस्तुत किया है-

"लाशों की कतारें कटे क्षेत्रवत कोसों तक
भिन्न-भिन्न भावों का बगीचा-सा लगाए थीं;
कर-करवाल थी किसी के तो किसी के गदा,
कोई धनु-वाण इस आन भी चढ़ाए थीं !
कोई हँस रही थी तो दाँत पीसती थी कोई;
कोई प्रतिपक्षी को स्वकक्ष में दबाए थीं !"

एक और उदाहरण देखिये-

"गीदड़, गरुड़, गृद्ध, गण्डक, बिड़ाल आदि,
सभी थे शवों को निज-निज ओर खींचते;
चोंचों में पकड़ अर्द्धमृत आहतों की आँखें
खीज-खीज खींचते वे, भींचते औं ढ़ींचते !
शवों में छिपे हुओं के भी न बचते थे प्राण,
हिस्र जन्तु थे उन्हें भी खींचने को झींकते;
पंजों से खरोंच फिर, नोंच-नोंच, कोंच-कोंच;
कटे-फटे अंग कर पृथक-पृथक घसीटते !"

गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने युद्ध के लिए अर्जुन को कर्म का उपदेश दिया था। पथिक जी युद्ध के विरोध में उसी कर्म को निम्न प्रकार परिभाषित करते हैं-

"किंतु है कर्म दुधारा खंग, जहाँ है वह अनन्त का द्वार;
वहीं है वह दुस्तर, दुर्गम्य, विदित वैतरणी की भी धार !

ज्ञान-युत कर्म, कर्म-युत ज्ञान, जहाँ करता है जग-कल्याण;
ज्ञान-हत कर्म, कर्म-हत ज्ञान, वहाँ है विनाश का सामान !"

वे गीता के उपदेश की व्याख्या करते हुए कहते हैं-

"फलेच्छा का करके बलिदान, मिटाकर स्वकीयता का भान;
विश्व-हित में अपना हित मान, कर्म का करे सदानुष्ठान !
भोग में योग, क्रिया में स्थैर्य, रखे दुख-बवण्डरों में धैर्य;
विकृति का ज्वार करे न स्पर्ष, सभी सम हों विपत्तियाँ-हर्ष !
ध्येय से दृष्टि न क्षण भर टले, कामना से न कर्म-तरु फले;
तभी है कर्म मोक्ष का द्वार, अन्यथा है रुपे का हार !"

विजय सिंह पथिक जी प्रगतिशील विचारक व समाज सुधारक थे। नारी स्वतंत्रता और समता के वे घोर समर्थक थे। उन्होंने विधवा विवाह के समर्थन में जोरदार अभियान चलाया और इस अभियान को बल प्रदान करने के लिए स्वयं एक बाल विधवा से विवाह किया था। महिला सशक्तीकरण को आवश्यक मानते हुए कवि कहता है-

"जिस समाज में होता है महिलाओं का अपमान;
अथवा रक्खी जाती हैं वे दासी-छाग-समान;
वे समाज परतंत्र-पाश फँस विविध क्लेश पाते हैं;
धन आ जाय, न पर उनके गृह सच्चे सुख आते हैं !"

पथिक जी ने भारतीय समाज में महिलाओं की वास्तविक स्थिति का भी यथार्थ चित्रण किया है। असुरमहिषि से उन्होंने महिलाओं के मन की बात कहलाई है-

"ब्याह नाम से हम तो वास्तव में बेची जाती हैं;
दासी हैं सचमुच, हाँ, वैसे गृहिणी कहलाती हैं !
धन दे प्राप्त षोडशी कर लेता है साठ बरस का;
कहीं षोडशी पाती है पति केवल आठ बरस का !
उस पर सिखलाया जाता है, कि है विषय-सुख धर्म;
इन्द्रिय सुख की तृप्ति मात्र है महिलाओं का कर्म !"

असुरमहिषि न केवल स्त्रियों की दयनीय दशा का वर्णन करती हैं बल्कि स्त्री और पुरुष के लिए नैतिकता के अलग-अलग मापदंड होने पर भी प्रश्न उठाती हैं-

"बन्धनहीन हमारे पति हैं, सब कुकर्म करने में;
किंतु पतित हो जाती हैं हम भूले भी गिरने में !
हम उनकी रंजन-साधन है, वे हैं छैल-छबीले;
कर सकती हैं हम न इस दशा पर स्वनेत्र भी गीले !"

भारतीय सामाजिक व्यवस्था को एक शरीर की तरह देखते हुए पथिक जी सारे

अंगों को महत्वपूर्ण बताते हैं-

"अतएव जिस भाँति देह के विभिन्न अंग,
भिन्न-भिन्न भाव, वर्ण, रुप, गुण वाले हैं;
अग्नि, जल, वायु, वात, कफ, कर, पद,
नेत्र, श्रोतृ, नाक, सबके ढ़ँग निराले हैं !
कोई कटु है तो कोई मधुर, कसैले, तीक्ष्ण,
कोई बंक-बक्र कोई श्वेत, कोई काले हैं;
तो भी हैं सभी ये एक दूसरे के पोषणार्थ,
सारे देह ही की शक्ति को बढ़ाने वाले हैं !"

पथिक जी के सामाजिक व रचनात्मक कार्य

विजय सिंह पथिक केवल राजनीतिक आन्दोलनकारी ही नहीं वरन् अच्छे समाज सुधारक भी थे। वे बीच-बीच में समाज सुधार के आन्दोलन भी चलाते रहते थे और रचनात्मक कार्य भी करते थे। वे सामाजिक रुढ़ियों, कुप्रथाओं और अंधविश्वास के विरोधी थे। वे जातिवाद और साम्प्रदायिकता के भी खिलाफ थे। लिंगभेद समाप्त कर महिलाओं को बराबर का दर्जा देने के हिमायती थे। सती प्रथा और बाल विवाह जैसी कुरीतियों को कलंक मानते थे। विधवा विवाह और अन्तरजातीय विवाह के समर्थक थे। उन्होंने स्वयं एक विजातीय विधवा महिला से शादी कर समाज के सामने आदर्श प्रस्तुत किया था। इन तमाम विषयों पर वे सदैव समाज को जागरुक करते रहते थे और समय-समय पर इनके लिए उन्होंने अभ्यिान भी चलाये। उनके द्वारा किये गये समाज सुधार के कार्यों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

1. **शराबबन्दी-** जब पथिक जी बिजौलिया क्षेत्र में आये तो वहाँ के किसानों में मद्यपान का बहुत चलन था। 1921 ई० में जब महात्मा गांधी ने शराब बन्दी आन्दोलन छेड़ा तो उसका असर इस अंचल पर भी हुआ। पथिक जी ने किसान पंचायतों में मद्यपान के खिलाफ बोल-बोलकर किसानों को इसके लिए तैयार किया। परिणाम यह हुआ कि किसानों ने सामूहिक रुप से शराब छोड़ने के संकल्प लिए। धाकड़ों की जातीय पंचायत ने ऐलान किया कि उनकी जाति का जो आदमी शराब पियेगा, उसका सामाजिक बहिष्कार किया जायेगा और उसे जाति से बाहर कर दिया जायेगा। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत जल्दी ही बिजौलिया क्षेत्र में शराब बन्दी लागू हो गई।

2. **कन्या विक्रय** – ऊपरमाल के किसानों में कन्या विक्रय की शर्मनाक कुप्रथा प्रचलित थी। कन्या का पिता विवाह के समय वर पक्ष से एक बड़ी रकम लेता था। इस प्रथा के चलते अधिकांश विवाह अनमेल होते थे। दूसरा दुष्परिणाम यह होता था कि नव दम्पत्ति जीवन के प्रारम्भ से ही कर्जदार हो जाते थे। पथिक जी ने इस कुप्रथा के खिलाफ जागृति अभियान चलाया। वे किसानों से कन्या विक्रय न करने की प्रतिज्ञा कराते थे। परिणामस्वरुप यह कुप्रथा काफी कम हो गई। पथिक जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से भी इस कुप्रथा के खिलाफ माहौल बनाया। उन्होनें आहवान किया-

कन्या पर छदाम लेना भी है गोवध सम पाप
सात जन्म तक नहीं छूटता कन्याओं का श्राप।

3. **शिक्षा** – ऊपरमाल में किसान आन्दोलन का श्रीगणेश ही पाठशालाओं से हुआ था। पाठशालाएं पथिक जी की कार्यपद्धति की आधारशिला थीं। वे इनके द्वारा ही गांवों में जागृति उत्पन्न करते थे और पाठशालाओं के छात्र किसान आन्दोलन के स्वयंसेवक के रुप में कार्य करते थे। पथिक जी ने ऊपरमाल के एक-एक गांव में पाठशाला की स्थापना की और उनमें राष्ट्रीय विचारधारा के अध्यापक रखे जो बालकों को पुस्तक ज्ञान कराते और प्रौढ़ों को समाचार पत्र तथा राष्ट्रीय विचार युक्त पुस्तकें सुनाकर उन्हें देश प्रेम के लिए प्रेरित करते थे। पथिक जी ने स्वयं भी अध्यापन का कार्य किया था। उनके छात्रों में बाद में कई प्रतिभाशाली व्यक्तित्व पैदा हुए। प्रसिद्ध पत्रकार शोभालाल गुप्त उन्हीं की पाठशाला की उपज थे जो दैनिक हिन्दुस्तान के सम्पादक भी रहे।

4. **जातिभेद उन्मूलन** – पथिक जी जाति प्रथा को देश की एकता व अखण्डता के लिए कमजोरी मानते थे। वे स्वयं कभी अपनी जाति नहीं बताते थे। जब कोई जोर देकर उनसे जाति बताने को कहता था तो वे यह कह कर पीछा छुड़ा लेते थे कि तुम्हें जो सही जंचे, वही मान लो। यही कारण रहा कि राजस्थान के लोग पथिक जी किस जाति के हैं, यह नहीं जानते थे। कोई उन्हें जाट, कोई राजपूत, कोई गुर्जर और कोई तो सिख समझते थे। पंचायतों के गठन में भी पथिक जी जातीय समरसता का ख्याल रखते थे। उन्होंने कई बार दलितों को किसानों की पंचायत का सरपंच बनाया। महात्मा गांधी ने जब हरिजन उद्धार कार्यक्रम चलाया तो ऊपरमाल अंचल में भी पथिक जी के नेतृत्व में यह आन्दोलन जोर शोर से चलाया गया।

5. **खादी अभियान** – श्री जमनालाल बजाज की प्रेरणा और श्री विजय सिंह पथिक के सहयोग से अखिल भारतीय चर्खा संघ के श्री जेठालाल भाई ने बिजौलिया में खादी उत्पादन केन्द्र स्थापित किया था। इस कार्य में यहां आशातीत सफलता मिली। प्रत्येक गांव में कपास उत्पादन करने और प्रत्येक घर में सूत कातने की व्यवस्था की गई। परिणाम यह हुआ कि पूरे बिजौलिया क्षेत्र में मिल का कपड़ा आना ही बन्द हो गया। साधु सीताराम दास, लालूराम जी, रामचन्द्र जी और हेमराज जी ने खादी उद्योग के कार्य में सराहनीय योगदान दिया।

6. **स्वावलम्बन** – पथिक जी किसानों को स्वावलम्बी और शक्तिशाली बनने का पाठ पढ़ाते थे। वे कहते थे कि दुनिया में कमजोरों की मदद कोई नहीं करता। इसलिये यदि न्याय चाहते हो तो शक्तिशाली बनो। आन्दोलन के दौरान बिजौलिया कस्बे के व्यापारियों का समर्थन सदैव ठिकाने के साथ रहा। ये व्यापारी किसान पंचायत का विरोध करते थे। पथिक जी ने व्यापारियों को सबक सिखाने के लिए बिजौलिया में एक पंचायती दुकान खुलवाई और किसानों से कहा कि वे इसी से अपनी जरुरत का सामान खरीदें। कोई भी व्यापारियों से माल न खरीदे। इससे जल्द ही बिजौलिया के व्यापारियों की अक्ल ठिकाने आ गई और किसानों में स्वावलम्बन व स्वाभिमान की भावना पैदा हुई।

विश्व प्रसिद्ध बिजौलिया आन्दोलन का संक्षिप्त परिचय

बिजौलिया भूतपूर्व उदयपुर रियासत (राजस्थान) में एक प्रथम श्रेणी की जागीर थी। बिजौलिया के किसानों पर भूमि कर के अतिरिक्त 80 प्रकार के अन्य टैक्स लगे हुए थे। पूरे वर्ष हाड़तोड़ मेहनत करने के बाद भी किसानों पर कर्ज बना रहता था। बिजौलिया का जागीरदार एक अत्याचारी व तानाशाह किस्म का सामंत था, जिसे किसानों की दुर्दशा की कोई चिन्ता न थी। यह एक अर्द्धस्वतंत्र शासक था, जिसे मेवाड़ राज्य और ब्रिटिश सत्ता का समर्थन और सहायता प्राप्त थी। दूसरी तरफ, किसान बहुत कमजोर और असंगठित थे। विजय सिंह पथिक ने ऐसी विषम परिस्थितियों में किसानों को संगठित कर यहाँ आन्दोलन को सफल किया। इस आन्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि यह पूर्ण रुप से स्वावलम्बी आन्दोलन था। उसे बाहर से धन या जन की सहायता प्राप्त नहीं थी। किसानों की अपनी पंचायत ने आन्दोलन का संचालन किया। बिजौलिया आन्दोलन कोई अल्पकालीन आन्दोलन नहीं था। बिजौलिया के किसान लम्बे समय तक ठिकाने, जागीरदार और मेवाड़ राज्य की शक्ति से जूझते रहे। उन्होंने अमानवीय अत्याचार सहे। विजय सिंह पथिक के चमत्कारिक नेतृत्व ने किसानों के अन्दर इतना साहस पैदा कर दिया था कि उन्होंने बिजौलिया ठिकाने की भूमि को परती रख दिया। कई वर्षों तक उसे नहीं जोता। किसान पड़ोसी राज्यों में जाकर खेती करने लगे किन्तु जागीरदार के अत्याचारों के आगे नहीं झुके। अंत में अंग्रेज सरकार को बीच में पड़ कर किसानों और जागीरदार के बीच समझौता कराना पड़ा।

बिजौलिया आन्दोलन की एक विशेषता यह थी कि इसमें सिर्फ पुरुष ही नहीं बल्कि स्त्रियों और बच्चों ने भी बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। कई बार ठिकाने के अत्याचार के आगे जब पुरुष हतोत्साहित होने लगते तो स्त्रियों ने उन्हें ललकारा और उत्साह बढ़ाया। एक गाँव से लेकर दूसरे गाँव तक सूचनाऐं पहुंचाने और पुलिस की गतिविधियों पर नज़र रखने का काम बालकों से लिया जाता था।

बिजौलिया ठिकाना किसानों में शोषण, अत्याचार और अन्याय का जीता-जागता सबूत था। यहाँ के सामंतों ने सनक की हद तक तरह-तरह के 80 टैक्स किसानों पर थोप रखे थे। ठिकाना टैक्स लगाने के बहाने खोजता था और कोई बहाना मिलते ही नये नाम से नया टैक्स लगा देता था। इन टैक्सों की कहानी बड़ी विचित्र थी। सबसे पहले किसानों पर 'तलवार बंधाई' का टैक्स लगाया गया। यह टैक्स उस समय किसानों से वसूला जाता था, जब किसी जागीरदार की मृत्यु होने पर उसका कोई उत्तराधिकारी नया जागीरदार बनता। ठिकाने ने गाँव-गाँव में ठिकाने के हितों की

देखभाल के लिए जो कर्मचारी रखे थे उनका पूरा खर्च भी किसानों को उठाना पड़ता था। जागीरदार के घर में कोई शादी होने पर किसानों को अनेक प्रकार की बेगारें देनी पड़तीं। शादी का पूरा खर्च भी किसानों से लिया जाता था। इसे 'नूत बराड़' टैक्स कहा जाता था। जो किसान गन्ने की खेती करते, उनसे लगान के अलावा एक रस का घड़ा, गन्नों का एक बोझा और दस सेर गुड़ टैक्स के रुप में वसूल किया जाता था। जब किसी किसान की बेटी की शादी होती तो उनसे प्रति लड़की तेरह रुपये का 'चंवरी टैक्स' लिया जाता था।

कुछ टैक्सों की कहानी तो बड़ी रोचक थी। एक बार होली के अवसर पर मनिपुर गाँव के भील जंगल से एक जीवित सांभरी पकड़ लाये और राव साहब को खुश करने के लिए उन्हें भेंट कर दी। अगले वर्ष फिर होली पर उस गाँव से सांभरी की मांग की गई और न देने पर 'सांभरी लाग' के नाम से नया टैक्स लगा दिया गया। एक बार जावदा के पटेल के गन्ने का गुड़ बहुत बढ़िया बना। उसने भावनावश राव साहब को जाकर गुड़ भेंट कर दिया। दूसरे वर्ष फिर उनसे गुड़ मंगवाया गया। तीसरे वर्ष 'गुड़ की भेली' के नाम से सभी पटेलों पर टैक्स लगा दिया गया। इस तरह एक-एक कर लगभग 80 टैक्स किसानों पर लगाये गये। जून 1922 में ए०जी०जी० की मध्यस्थता में जो फैसला हुआ था, उसमें 74 प्रकार के टैक्सों पर चर्चा हुई थी। इन टैक्सों की सूची राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर द्वारा प्रकाशित 'बिजौलिया किसान आन्दोलन का इतिहास' में पृ० 36 पर दी गई है।

बिजौलिया के किसान सामंती शोषण से दुःखी तो थे किन्तु संगठन और नेता के अभाव में कोई आवाज नहीं उठा पा रहे थे। 1897 में अनायास ऐसा अवसर आया जिसमें किसान आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार हुई। गाँव गिरधरपुरा में गंगाराम धाकड़ ने अपने पिता के मृत्युभोज में समस्त ऊपरमाल के किसानों को आमंत्रित किया था। यहाँ हजारों किसान एक जगह इकट्ठा हुए तो ठिकाने के अत्याचार और किसानों के दुखदर्द पर चर्चा होना स्वाभाविक था। विस्तृत चर्चा के उपरान्त यह तय हुआ कि किसानों के कुछ प्रतिनिधि उदयपुर जायें और अपनी कष्ट गाथा महाराणा फतहसिंह तक पहुंचायें। इसके लिए बेरीलाल गाँव के नानजी पटेल और गोपाल निवास के ठाकरी पटेल को चुना गया।

अपने घर-बार व खेती को छोड़ कर नानजी पटेल और ठाकरी पटेल पूरे आठ महीने उदयपुर में पड़े रहे। तब जाकर उनकी मुलाकात महाराणा से हुई। महाराणा साहब ने किसानों की कष्ट गाथा को सुना और असिस्टेन्ट माल हाकिम (रेवेन्यू ऑफिसर) हामिद हुसैन को किसानों की लागत व बेगार सम्बन्धी शिकायतों की जांच के लिए बिजौलिया भेजा। रेवेन्यु ऑफिसर ने छः महीने तक इस सम्बन्ध में जांच की और किसानों के पक्ष व ठिकाने के विरुद्ध रिपोर्ट दी, परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। राज्य की ओर से ठिकाने को एकाध लागत समाप्त करने का परामर्श भर आया। ठिकाने के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की गई। नानजी पटेल और ठाकरी पटेल को जरुर ठिकाने का कोपभाजन बनना पड़ा। जैसे ही ठिकाने को यह पता चला कि ये दोनों किसान

महाराणा से शिकायत करने उदयपुर गये थे, उन दोनों की समस्त जमीन जायदादें छीन कर उन्हें बिजौलिया जागीर से निर्वासित कर दिया गया। इस घटना से किसानों के बीच ऐसा आतंक छा गया कि कोई ठिकाने के शोषण और अत्याचार के विरुद्ध आपस में चर्चा करने का साहस भी नहीं करता था।

इसके बाद करीब पन्द्रह वर्ष तक किसानों के बीच कोई खास हलचल देखने को नहीं मिली, परन्तु जब ठिकाने की लूट और शोषण चरम सीमा को पार कर गया तो मार्च 1913 में बिजौलिया के 800-1000 किसान इकट्ठा होकर राव साहब से प्रार्थना करने बिजौलिया आये, किन्तु राव साहब ने उनसे बात करने से इंकार कर दिया। किसान भूखे-प्यासे पूरे दिन महल के चौक में बैठे रहे। राव साहब के अपमानजनक व्यवहार से आहत किसानों ने वहीं बैठकर फैसला लिया कि अगले वर्ष सारी जमीन परती रख दी जाय और उस साल किसानों ने अपनी जमीन नहीं बोई। पड़ोसी रियासतों में जाकर उन्होंने खाने लायक अन्न पैदा किया।

इसी बीच 1917 में एक ऐसी घटना घटी, जिसने किसानों के अन्दर आक्रोश की अग्नि को भड़का दिया। बिजौलिया के राव साहब की माता राणावत जी को एक तीर्थयात्रा पर सपरिवार जाना था। उनको तथा नौकर चाकरों की भीड़ तथा सामान ले जाने के लिए किसानों की बैलगाड़ियों को जबरन बेगार में पकड़ लिया गया। किसानों के खेतों में काम चल रहा था। वे पन्द्रह दिनों के लिए अपने बैलों समेत बेगार पर नहीं जा सकते थे। किसानों ने बेगार देने में आनाकानी की तो उन्हें पीटा गया और अपमानित किया गया। किसानों के साथ चाकरी करने के लिए बहुत से कुम्हार, लुहार, बढ़ई, नाई भी बेगार में पकड़ लिये गये। उन्हें पन्द्रह दिनों तक राव साहब की माताजी की बेगार में रहना पड़ा। इस घटना ने किसानों के अन्दर आक्रोश पैदा कर दिया और वे बेगार प्रथा के खिलाफ विद्रोह का मन बनाने लगे।

किसान दुखी थे और अपने साथ होने वाले अन्याय के खिलाफ आवाज उठाना चाहते थे, किन्तु कुशल नेतृत्व के अभाव में कुछ ठोस नहीं कर पा रहे थे। ऐसे समय में ही उन्हें विजय सिंह पथिक के रुप में एक महान क्रान्तिकारी, प्रतिभासम्पन्न, विलक्षण संगठनकर्ता और राजनीति निपुण नेता मिल गया, जिसकी वाणी और लेखनी में अपार ओजस्विता थी। किसी समय के विप्लवी क्रान्तिकारी भूपसिंह राठी नाम व भेष बदल कर विजय सिंह पथिक के रुप में पास के गाँव ओछड़ी में अज्ञातवास में रह रहे थे। बिजौलिया के किसानों के मार्गदर्शक व सहयोगी साधु सीताराम दास विद्या प्रचारिणी सभा की स्थापना के विषय में मोही के डूंगर सिंह भाटी से मिले थे। डूंगर सिंह भाटी ने उन्हें पथिक जी के साहस, शौर्य, विद्वता और राजनीतिक चातुर्य के बारे में बताया और यह भी कहा कि यदि वे किसी तरह पथिक जी को बिजौलिया ला सकें तो उनके नेतृत्व में बिजौलिया का किसान आन्दोलन सबल और शक्तिशाली बन सकता है। उसी समय चित्तौड़ गढ़ की विद्या प्रचारिणी सभा का अधिवेशन होने जा रहा था। बिजौलिया के प्रतिनिधि के रुप में साधु सीताराम दास और मगनलाल शर्मा इस अधिवेशन में गये। वहीं

पर इनकी मुलाकात विजय सिंह पथिक जी से हुई। इन्होंने बिजौलिया के किसानों की सारी कष्ट गाथा सुनाकर पथिक जी से उनका नेतृत्व करने की प्रार्थना की। दो दिन के लम्बे विचार विमर्श के बाद पथिक जी इसके लिए तैयार हो गये।

ठीक एक महीने बाद पथिक जी बिजौलिया पहुंच गये। वहाँ वे विद्या प्रचारिणी सभा के भवन में ठहरे। वहाँ यह बताया गया कि विद्या प्रचारिणी सभा की पाठशाला के लिए नये अध्यापक आये हैं। पथिक जी दिन में पाठशाला में बच्चों को पढ़ाते और रात में गुप्त रुप से किसान आन्दोलन की गतिविधियों में भाग लेते। वे साधु सीताराम दास और माणिक्यलाल वर्मा के साथ गाँव-गाँव घूमते और किसानों को संगठित करते। वे किसानों की कष्टगाथा को ध्यान से सुनते और कहते कि संसार में निर्बलों की बात कोई नहीं सुनता। सभी उनका शोषण करते हैं। अतः सबल और तेजवान बनो और संगठित हो जाओ। तुम लोग यदि संगठित हो गये तो बिजौलिया के इस छोटे से ठिकाने की तो हस्ती ही क्या है, राजे-महाराजों और उनकी प्रभुशक्ति ब्रिटिश साम्राज्य को भी समाप्त किया जा सकता है। वे किसानों से कहते कि संगठित हो जाओ, अपना पंचायत बोर्ड बनाओ, सही समय आने पर ठिकाने से मोर्चा लिया जायेगा।

कुछ ही समय में पथिक जी ने बिजौलिया ठिकाने के सभी गाँवों में अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लिया। ग्रामीण उन्हें अपना नेता, मित्र तथा सहोदर मानने लगे। वे उस अंचल के हृदय सम्राट बन गये। स्नेह और श्रद्धा से ग्रामीण उन्हें महात्मा जी कहने लगे। बिजौलिया के किसानों को पथिक जी पर इतना विश्वास हो गया कि वे उनके एक संकेत मात्र पर कठिन से कठिन त्याग करने और कष्ट व जोखिम उठाने को भी तैयार रहते।

इसी बीच पथिक ने अपने मित्र नायब मुंसरिम डूंगर सिंह भाटी तथा ईश्वरदान आसिया की सहायता से ठिकाने के सभी कागजातों का गम्भीर अध्ययन कर यह पता लगाया कि ठिकाने द्वारा किसानों से जो भयंकर लागतें और बेगार ली जाती हैं, ठिकाने के पास उनका कोई वैधानिक अधिकार नहीं है। इसके अतिरिक्त ठिकाने और राज्य के बीच होने वाली लिखा-पढ़ी का अध्ययन भी पथिक जी ने किया। उन्होंने अपने सम्पर्कों के बल पर ऐसी व्यवस्था कर ली कि राज्य व ठिकाने के बीच जो लिखा-पढ़ी होती, वह पथिक जी के हाथों से गुजरती थी। इससे पथिक जी की दूरदर्शिता और समझदारी का सबूत मिलता है।

इसी बीच प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया। किसान अभी दुर्भिक्ष और अकाल की मार से उबर भी न पाये थे कि उनसे युद्ध चंदा और बकाया ऋण जबरन उगाहा जाने लगा। तलवारबन्दी का रुपया भी किसानों से बलपूर्वक लिया जाने लगा। इस कईतरफा मार से बिजौलिया की जनता तिलमिला उठी। पथिक जी ने किसानों को युद्ध का चंदा, ऋण और बेगार न देने का आहवान किया। पथिक जी का आदेश किसानों के लिए ईश्वर का आदेश था। बेगार से इंकार करने पर ठिकाने के कर्मचारियों ने गोविन्द निवास गाँव के नारायणजी पटेल को बन्दी बना लिया और बिजौलिया ले गये। पथिक जी ने आदेश

दिया कि ज्यादा से ज्यादा किसान बिजौलिया पहुंचे और नारायणजी पटेल के साथ गिरफ्तारी दें। किसानों के जत्थे के जत्थे बिजौलिया पहुंचने लगे। सभी का एक ही नारा था- "इन्हें छोड़ दो या हमें जेल भेज दो।" देखते ही देखते दो हजार किसान इकट्ठे हो गये। मुंसिफ ने नारायण पटेल को रिहा कर दिया। यह बिजौलिया के किसानों की पहली जीत थी। इस विजय से किसानों में आत्मविश्वास तथा उत्साह की लहर फैल गई।

पथिक जी का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे न केवल भाषणों के द्वारा किसानों को संगठित व प्रेरित करते थे वरन् आन्दोलन के समर्थन में गीत व कविता बना कर लोगों से उन्हें सभाओं में गवाया करते थे। गीतों द्वारा प्रचार करने की कला का पथिक जी ने बिजौलिया आन्दोलन में सफलतापूर्वक उपयोग किया। पथिक जी ने इस आन्दोलन की ओर देश का ध्यान आकर्षित करने के लिए अखबारों और पत्रकारिता का भी भरपूर उपयोग किया। उन्होंने 'प्रताप' के यशस्वी सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी को बिजौलिया के किसानों की ओर से राखी भेजी और मार्मिक पत्र लिखकर किसानों की पीड़ा को 'प्रताप' में स्थान देने का अनुरोध किया। पथिक जी के प्रयास से 'प्रताप' बिजौलिया आन्दोलन का मुखपत्र ही बन गया था। उसके हर अंक में विस्तार से किसान आन्दोलन के समाचार छपने लगे। उसी से कुछ दूसरे समाचार पत्र भी इन समाचारों को छापने लगे। इससे बिजौलिया आन्दोलन की चर्चा पूरे देश में होने लगी। इससे अंग्रेज सरकार चौंकी। राज्य तथा ठिकाने के कर्मचारी क्रोध से बौखला उठे। किसानों पर उनका दमन और बढ़ गया, किन्तु पथिक जी ने जनता को ऐसा मजबूत बना दिया था कि ठिकाने का आतंक जाता रहा।

इस बीच, पथिक राज्य के अधिकारियों को किसानों के आवेदन भिजवाते रहते थे। गाँव-गाँव में उन्होंने पंचायत बोर्डों का गठन करवा दिया था। साथ ही महिलाओं की सभा व समिति अलग से गठित कर दी थी। इस आन्दोलन की सफलता में महिला शक्ति का विशेष योगदान रहा। पथिक जी ने महिलाओं को कुछ ऐसे गीत लिखकर दिये थे जिन्हें जब पुरुष हिम्मत हारे, तब सभाओं में गाया जाता था। इनका अर्थ होता था कि हे स्वामी यदि तुम ठिकाने के अत्याचार, दमन और आतंक से भयभीत हो गये हो तो तुम अपना साफा और अंगरखा हमें दे दो। तुम हमारी ओढ़नी, लहंगा और चूड़ियाँ पहनकर घर में रहो। हम ठिकाने से मोर्चा लेने जायेंगी। इन गीतों का ऐसा चमत्कारी प्रभाव होता कि पुरुष दूनी शक्ति से आन्दोलन में लग जाते।

किसानों की बढ़ती शक्ति से मेवाड़ राज्य का चिन्तित होना स्वाभाविक था। किसान आन्दोलन का दमन करने के लिए नायब मुंसिफ दीपलाल को हटा कर उनकी जगह कठोर व क्रूर स्वभाव के माधोसिंह कोठारी को भेजा गया। माधोसिंह ने आते ही झूठी घोषणा की कि राज्य के महकमा खास ने किसानों से पूर्ववत लागतें और बेगार लेने की आज्ञा दे दी है। साथ ही इनकी वसूली के लिए उसने किसानों पर अत्याचार प्रारम्भ कर दिये। पथिक जी के निर्देश पर किसानों ने लागतें और बेगार देना अस्वीकार कर दिया। माधोसिंह ने राज्य की अवहेलना करने के अपराध में 51 व्यक्तियों को गिरफ्तार

कर लिया। इनमें सभी प्रमुख पटेल, प्रभावशाली किसान और आन्दोलन के कार्यकर्ता थे। साधु सीताराम दास और माणिक्यलाल वर्मा भी गिरफ्तार कर लिये गये। यह बिजौलिया किसान सत्याग्रह की पहली सामूहिक गिरफ्तारी थी। पथिक जी ने इस गिरफ्तारी से ..बराने के बजाय पांच सौ अन्य किसानों को तैयार कर नायब मुंसिफ माधोसिंह के पास भेजा। उन्हें समझा कर भेजा गया कि वे माधोसिंह से लागतें और बेगार लेने सम्बन्धी महकमा खास की राजाज्ञा दिखाने को कहें। जब किसान गढ़ के अंदर यह मांग कर रहे थे तो माधोसिंह ने गढ़ के फाटक बंद करवा दिये। सभी किसान कैद हो गये थे। किसानों ने वहीं डेरा डाल दिया। सुबह जब शौच आदि के लिए इन किसानों को सिपाहियों के पहरे में गढ़ से बाहर लाया गया तो पथिक जी के भेजे कुछ किसान उनमें आ मिले। उन्होंने पथिक जी का संदेश सुनाया कि गढ़ के बाहर चौक में ही डेरा डाल दो और जेल बनाये पड़े रहो। रात्रि में पथिक जी स्वयं भी भेष बदलकर किसानों के बीच आ गये। अब किसान बहुत अधिक उत्साहित हो गये और उन्होंने घोषणा कर दी कि जब तक हमें न्याय नहीं मिलेगा, हम यहाँ से नहीं हटेंगे। उस समय समस्त बिजौलिया ही एक सत्याग्रह शिविर बन गया था। भारत में यह प्रथम किसान सत्याग्रह था, जिसने बिजौलिया ठिकाना, मेवाड़ राज्य और भारत सरकार को हिला दिया।

ठिकाने ने किसानों पर भयंकर अत्याचार और जुल्म ढाने शुरु कर दिये। माधोसिंह किसानों को बिना वारंट के पकड़ मंगवाता और लागत व बेगार देने की स्वीकृति लिखने को कहा जाता। इंकार करने पर उन्हें पीटा जाता और तरह-तरह की यातनाऐं दी जातीं। स्त्रियों और बच्चों तक को अपमानित किया जाता, किन्तु वे लोग 'पथिक जी की जय' बोलते और सहर्ष सारे अत्याचार सहते। किसानों के मकानों में ताला लगा दिया जाता, उनका सामान उठा लिया जाता। लोगों के पैर काठ में डालकर चौड़ा कर दिया जाता और ताला डाल दिया जाता। किसानों को औंधे मुह बांधकर लटका दिया जाता और ऊपर से मार पड़ती। छाती और हाथों पर भारी पत्थर लटका कर कई-कई दिन तक खड़ा रखा जाता। खड़ी फसल नष्ट कर देना आम बात थी। इतने अत्याचारों को सहने के बाद भी किसान अपने इरादे से नहीं डिगे।

आन्दोलन की बढ़ती शक्ति भांप कर महाराणा साहब ने अप्रैल 1919 में बिजौलिया जांच आयोग गठित किया। कमीशन ने किसानों को आश्वासन दिया कि तुम्हारे संब कष्ट दूर किये जायेंगे। कमीशन के आदेश पर सब किसान कैदी रिहा कर दिये गये। यह किसान आन्दोलन की अभूतपूर्व विजय थी। जब कैदी छोड़े गये तो सम्पूर्ण ऊपरमाल के गाँवों के स्त्री-पुरुष उनके स्वागत के लिए उमड़ पड़े। गाजे-बाजे व जय-जयकार के साथ पुष्प वर्षा के बीच उनका जोरदार स्वागत हुआ। समस्त क्षेत्र में उत्साह की लहर फैल गई। पंचायत की धाक बैठ गई। यह सब हुआ किन्तु लागतों और बेगारों का प्रश्न राज्य द्वारा फैसला होने तक स्थगित कर दिया गया।

इस बीच, पथिक जी ने एक अभूतपूर्व कदम उठाया। उन्होंने पंचायत की ओर से उदयपुर राज्य तथा चित्तौड़गढ़ के जिलाधीश को पत्र भिजवाया कि जब तक ठिकाने

के साथ हमारा लागतों तथा बेगार सम्बन्धी विवाद हल नहीं हो जाता, तब तक हम किसी भी मामले की जांच ठिकाने से नहीं करायेंगे। यदि कोई ऐसी घटना घटे, जिसमें पुलिस के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो तो उसकी जांच तथा मुकदमे की कार्रवाई राज्य के अधिकारियों द्वारा कराई जाय। हम ठिकाने के अधिकारियों के सामने न तो कोई बयान देंगे और न ही उनके गिरफ्तारी के आदेश मानेंगे। किसानों ने स्पष्ट कर दिया कि वे ठिकाने की प्रशासकीय सत्ता और अधिकार को स्वीकार नहीं करते। भारतवर्ष में यह प्रथम घटना थी कि किसानों ने ठिकाने की सत्ता को ही चुनौती दे दी थी।

पथिक जी ने किसानों को राय दी कि वे केवल असिंचित भूमि में ही खेती करें। सिंचित भूमि को पड़ती रख दें। पथिक जी ने ऐसा इसलिए किया कि सिंचित भूमि का लगान अधिक था। असिंचित भूमि का लगान नाम-मात्र का था। उनकी युक्ति थी कि इससे ठिकाने की आमदनी बहुत अधिक घट जायेगी और उसकी आर्थिक स्थिति बिगड़ जायेगी। ठिकाने वाले पथिक जी की इस युक्ति को समझ गये और उन्होंने कहा कि जो किसान असिंचित भूमि जोतेगा, उसे सिंचित भूमि का लगान भी देना होगा। इससे पंचायत और ठिकाने में एक नया संघर्ष छिड़ गया। पथिक जी ने मेवाड़ के महाराणा को इस विषय में पत्र पर पत्र लिखे और प्रताप व अन्य अखबारों में इनका प्रकाशन कराया। परिणाम यह हुआ कि मेवाड़ राज्य सरकार ने ठिकाने को आदेश दिया कि किसान जिस भूमि को जोते, उसी भूमि का लगान उनसे लिया जाय। यह किसानों की एक और जीत थी।

विजय सिंह पथिक एक ओर जहां किसान संगठन और आन्दोलन को मजबूत करने में लगे थे, वहीं देश भर से इसके लिए समर्थन जुटाने के प्रयास भी कर रहे थे। 1919 ई० में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। पथिक जी वहाँ जाकर कांग्रेस के बड़े नेताओं से मिले और बिजौलिया के किसानों की करुण गाथा सुनाई। उनके प्रयास से लोकमान्य तिलक ने कांग्रेस अधिवेशन में बिजौलिया सम्बन्धी प्रस्ताव रखा और श्री केलकर ने उसका समर्थन किया। हांलाकि गाँधी जी और मालवीय जी के विरोध के कारण यह प्रस्ताव पास न हो सका, किन्तु इससे सभी राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान बिजौलिया की ओर आकर्षित अवश्य हो गया। इसी समय 'राजपूताना मध्य भारत सभा' का अधिवेशन भी हुआ। पथिक जी ने वहाँ भी बिजौलिया का प्रश्न रखा। सभा ने भवानीदास सन्यासी के नेतृत्व में एक जांच आयोग नियुक्त किया। इससे पूर्व महात्मा गाँधी भी अपने निजी सचिव महादेव देसाई से बिजौलिया आन्दोलन की जांच करा चुके थे।

इन तमाम प्रयासों के बावजूद किसानों की पीड़ा का कोई इलाज नहीं हो पा रहा था। अब पथिक जी ने आर-पार की लड़ाई का मन बनाया। उन्होंने किसान पंचायत की ओर से मेवाड़ सरकार को नोटिस भिजवाया कि यदि एक माह में हम पर होने वाले अत्याचार समाप्त नहीं हुए तो ऊपरमाल की समस्त खेती की भूमि पड़ती रख देंगे। समय सीमा समाप्त होने पर किसानों ने अपने नोटिस पर अमल किया और समस्त भूमि को

बिना जुती छोड़ दिया। किसानों ने आस-पास के इलाकों में जाकर वहाँ के किसानों के साथ खेती कर ली। साथ ही किसानों ने यह भी ऐलान किया कि वे ठिकाने की कोई आज्ञा नहीं मानेंगे, मालगुजारी तथा कोई अन्य कर भी नहीं देगे, कोई लगान या बेगार नहीं देंगे और ठिकाने की कचहरी व पुलिस से कोई वास्ता नहीं रखेंगे। यह आन्दोलन ठिकाने के अस्तित्व को एक भयंकर चुनौती थी। ठिकाने की ओर से खूब दमन हुआ। लाठी, जेल, जुर्माना सभी प्रकार के दमनात्मक औजार प्रयोग किये गये, किन्तु किसान नहीं झुके।

पथिक जी के कुशल नेतृत्व के बारे में "बिजौलिया किसान आन्दोलन का इतिहास" पुस्तक के लेखक द्वय श्रीशंकर सहाय सक्सेना और डॉ० पदमजा शर्मा ने पेज 110 पर लिखा है- " पथिक जी का उस समय प्रदेश में ऐसा चमत्कारी प्रभाव था कि जब कोई प्रश्न राज्य वाले या ठिकाने वाले किसानों से पूछते तो उन्हें एक ही उत्तर मिलता कि महात्मा जी (पथिक जी) से पूछ कर उत्तर देंगे। इस आन्दोलन में बिजौलिया के छोटे जागीरदारों की दशा अत्यंत दयनीय हो उठी थी। वे लोग गुप्त रुप से पथिक जी के पास आते और उनकी सभी शर्तों को मान लेते। लागतों और बेगार को छोड़ देने का वचन देते। पथिक जी के आदेश पर राजस्थान सेवा संघ की ओर से उन गाँवों के पटेलों और पंचायतों को लिख दिया जाता कि उक्त जागीरदार ने संधि कर ली है। बेगार और लागतें न लेने का उसने इकरार कर लिया है, उसको किसानों से लगान उगाहने देना। पथिक जी का आदेश पहुंचने पर किसान उस जागीरदार को लगान दे देते। पथिक जी का कहना ऊपरमाल के किसानों के लिए एक पवित्र आदेश और राजाज्ञा से भी बढ़ कर था। समस्त अंचल में पथिक जी उस समय अत्यंत श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखे जाते थे।"

1922 आते-आते किसान सत्याग्रह की वजह से बिजौलिया ठिकाने की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो उठी थी। तीन वर्षों से ठिकाने को कोई मालगुजारी नहीं मिली थी। ठिकाने पर ऋण का भयंकर बोझ चढ़ गया था। स्थिति इतनी भयंकर हो गई थी कि राव साहब के रसोड़े और निजी खर्च चलना भी कठिन हो गया था। राव साहब चाहते थे कि किसानों के साथ अतिशीघ्र समझौता हो जाय। उधर भारत सरकार की नज़र भी बिजौलिया आन्दोलन पर थी। सरकार के राजपूताना क्षेत्र के एजेंट हालैण्ड तथा विदेश विभाग के अधिकारियों का यह मत बन गया था कि किसान पंचायत से अब शीघ्र ही समझौता कर लेना चाहिए। सरकार को लगता था कि यदि आन्दोलन चलता रहा तो समस्त राजपूताने में किसान आन्दोलन उग्र हो सकता है। अस्तु भारत सरकार की ओर से मेवाड़ सरकार को लिखा गया कि बिजौलिया आन्दोलन को समाप्त करने के लिए पंचायत से शीघ्र समझौता कर लिया जाय। इस उद्देश्य से एक बड़ा अधिकारी मण्डल बिजौलिया पहुंचा। भारत सरकार की ओर से ए०जी०जी० हालैण्ड, उनके सचिव ओगल्वी, मेवाड़ के ब्रिटिश रेजिडेन्ट विल्किन्सन, मेवाड़ राज्य की ओर से राज्य के मंत्री प्रभाषचन्द्र चटर्जी तथा श्री बिहारीलाल सायर हकीम आये। ठिकाने के प्रतिनिधि के रुप में कामदार हीरालाल, फौजदार तेजसिंह और मास्टर जालिम सिंह शामिल हुए। जिस

ए०जी०जी० के पधारने पर राजस्थान के बड़े-बड़े महाराजे भय से आतंकित हो उठते थे, जिसकी भृकुटी देख कर दम्भी नरेश भी भय से कांप उठते थे, उसी को पंचायत से समझौता करने स्वयं चलकर बिजौलिया आना पड़ा। यह पथिक जी के नेतृत्व में किसानों की अभूतपूर्व विजय थी।

अंततः 7 फरवरी, 1922 को ए०जी०जी० हालैण्ड की मध्यस्थता में सरकार, ठिकाने और किसानों के बीच समझौता हो गया। इस फैसले में किसानों पर लगने वाली करीब 35 लागतें माफ कर दी गईं। वर्षों के त्याग, तपस्या और आन्दोलन के उपरान्त किसानों की विजय हुई। किसानों के मुख विजयोल्लास से खिल उठे। समस्त ऊपरमाल अंचल में हर्ष की लहर दौड़ गई। बिजौलिया और विजय सिंह पथिक का नाम पूरे देश में चर्चित हो गया। किसान पंचायत और राजस्थान सेवा संघ की पूरे राजपूताने में धाक बैठ गई। बिजौलिया आन्दोलन का असर मेवाड़ की अन्य जागीरों व राजपूताने से बाहर तक भी पड़ा। इस आन्दोलन ने देश के बुद्धिजीवियों और राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान भी अपनी ओर खींचा। इस आंदोलन के बाद ही कांग्रेस का ध्यान पहली बार देशी राज्यों की जनता की समस्याओं की ओर गया।

आंदोलन का दूसरा दौर -

सन् 1922 में कर्नल हालैण्ड की मध्यस्थता के परिणामस्वरुप बिजौलिया आंदोलन शान्तिपूर्वक समाप्त हो गया था परन्तु ठिकाने के जागीरदारों ने समझौते का पालन नहीं किया और बिजौलिया के किसानों पर पुनः नये कर लगाए। परिणामतः बाध्य होकर किसानों को ठिकाने के विरुद्ध पुनः सत्याग्रह आरम्भ करना पड़ा। आन्दोलन को गति देने के लिए बिजौलिया किसान पंचायत ने विजय सिंह पथिक को आमंत्रित किया, जिन्होंने 18 मई, 1927 को बिजौलिया के निकट ग्वालियर सीमा पर किसानों से भेंट की। पथिक जी ने परामर्ष दिया कि किसानों को बढ़ा हुआ भू-राजस्व देने से इंकार कर देना चाहिए और सरकारी स्कूलों का बहिष्कार करना चाहिए। पथिकजी के परामर्ष पर बिजौलिया पंचायत के किसानों ने अहिंसात्मक साधनों को अपनाने, खादी पहनने और मद्यपान न करने का वचन दिया। कई नागरिकों ने पथिकजी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के रुप में अपने बाल कटवाये। ये समाचार जब सैटिलमेन्ट कमिश्नर जी०सी० ट्रेंच को मिला तो वह सशस्त्र सैनिकों को लेकर बिजौलिया की ओर रवाना हुआ ताकि गरीब किसानों को आतंकित किया जा सके। किसानों की अधिकाँश जमीन जब्त कर ली गई और उन्हें नये खेतिहरों में बांटा जाने लगा, परन्तु किसानों ने चेतावनी दी कि जो कोई जमीन लेगा, वह अपने पैसे खोएगा। इस प्रकार निर्भीकता से ठिकाने के अत्याचारों का सामना करने के लिए वे कटिबद्ध हो गये। आंदोलन को कुचलने की दृष्टि से महाराणा उदयपुर के आदेश से धाकड़ पंचायत को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया।

बिजौलिया किसानों की ओर से सन् 1922 में हरिभाऊ उपाध्याय ने ट्रेंच से सम्बन्ध स्थापित किया, जिसके परिणामस्वरुप एक समझौता हुआ। इसके अनुसार ठिकाने की ओर से यह आश्वासन दिया गया कि सन् 1922 के समझौते का पूर्ण रुप से

पालन किया जाएगा, परन्तु सन् 1931 में ठिकाने द्वारा समझौते का पुनः उल्लंघन किया गया। अतः अप्रैल 1931 में माणिक्यलाल वर्मा के नेतृत्व में किसानों ने जबरदस्ती भूमि पर कब्जा किया और जुताई की। ठिकाने और राज्य द्वारा दमन-नीति का आश्रय लिया गया और माणिक्यलाल वर्मा व लादूराम सहित 26 किसानों को पुलिस ने बुरी तरह पीटा। परन्तु आंदोलन फिर भी धीमा नहीं हुआ और 30 अप्रैल 1931 को किसानों ने फिर जमीन जोतने का प्रयत्न किया। इस आंदोलन के दौरान ठिकाने के कर्मचारी, सेना और पुलिस के सिपाही तथा जमीनों के नये मालिक किसानों पर टूट पड़े। किसानों ने धैर्य के साथ मार सहन की। उसी रात 4 बजे वर्माजी गिरफ्तार कर लिए गये। दूसरे दिन 200 किसान भी पकड़ लिए गये, जिनमें से 40 प्रमुख किसानों के अलावा अन्य को छोड़ दिया गया। इन 40 किसानों पर मुकदमा चलाया गया। वर्माजी को जुर्माने के अलावा छः माह का कठिन कारावास दिया गया और किसानों को तीन-तीन माह का। राज्य ने सत्याग्रह का मुकाबला करने के लिए बिजौलिया में सेना और पुलिस तैनात कर दी। इस समय हरिभाऊ जी पर मेवाड़-प्रवेश का प्रतिबंध था। अतः उन्होंने दुर्गाप्रसाद चौधरी, पंडित लादूराम, अचलेवर प्रसाद शर्मा, श्रीमती रमादेवी आदि को बिजौलिया भेजा, पर उन्हें कठोर यातनाए देने के बाद एक-एक क्रर बिजौलिया से निर्वासित कर दिया गया। प्यारचन्द बिश्नोई एक व्यापारी का भेष धारण कर बिजौलिया गये। उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। इसी बीच किसान सत्याग्रह करते रहे और गिरफ्तार होते रहे।

हरिभाऊजी ने मेवाड़ राज्य के अधिकारियों को किसानों की जमीनें वापस लौटाने के सम्बन्ध में कई पत्र लिखे, परन्तु उनके समस्त प्रयत्न विफल निकले। अन्त में हरिभाऊजी के अनुरोध पर "अखिल भारतीय देशी राज्य लोक-परिषद्" ने यह मामला अपने हाथ में ले लिया और उसने एक जांच समिति की नियुक्ति की। हरिभाऊजी ने महात्मा गाँधी को भी बिजौलिया में हो रहे दमन से अवगत कराया। महात्माजी की सलाह पर मालवीय जी ने मेवाड़ के प्रधानमंत्री सर सुखदेव प्रसाद को इस सम्बन्ध में एक पत्र लिखा। बिजौलिया का मसला अब अखिल भारतीय रुप धारण कर चुका था। सर सुखदेव ने स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए सेठ जमनालाल बजाज को वार्ता के लिए उदयपुर आमत्रित किया। फलतः लोक-परिषद् की समिति ने अपनी जांच कार्यवाही स्थगित कर दी। सेठ जमनालालजी 20 जुलाई 1931 को उदयपुर पहुंचे और महाराणा तथा सर सुखदेव प्रसाद से मिले। इस भेंट के फलस्वरुप एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार सरकार ने आश्वासन दिया कि माल की जमीन धीरे-धीरे पुराने खातेदारों को लौटा दी जाएगी, सत्याग्रही रिहा कर दिये जायेंगे और सन् 1922 के समझौते का पालन किया जाएगा। समझौते के फलस्वरुप सत्याग्रही जेल से रिहा कर दिये गये, पर जमीनों की वापसी के सम्बन्ध में कोई ठोस कार्यवाही नहीं हुई। इस पर वर्माजी किसानों का प्रतिनिधि-मण्डल लेकर सर सुखदेव प्रसाद से मिलने उदयुपर गये। सर सुखदेव प्रसाद ने वहीं पर वर्माजी को गिरफ्तार करा लिया और कुम्भलगढ़ भेज कर नज़रबन्द कर दिया। मेवाड़-सरकार ने नवम्बर 1933 में वर्माजी को ड़ेढ़ वर्ष की नज़रबंदी के बाद मुक्त

किया, पर उन्हें मेवाड़ से निर्वासित कर दिया।

आंदोलन का पटाक्षेप-

बिजौलिया आंदोलन का पटाक्षेप सन् 1941 में हुआ, जब मेवाड़ में सर टी० विजय राघवाचार्य प्रधानमंत्री बने। उस समय मेवाड़ प्रजामण्डल से पाबंदी उठायी जा चुकी थी और वर्माजी आदि प्रजामंडल के नेता जेल से मुक्त किये जा चुके थे। राघवाचार्य के आदेश पर तत्कालीन राजस्व मंत्री डॉ० मोहनसिंह मेहता बिजौलिया गये और वर्माजी तथा अन्य किसान नेताओं से बातचीत कर किसानों की समस्या का समाधान करवाया। किसानों को अपनी जमीनें वापस मिल गयीं। वर्माजी के जीवन की यह पहली बड़ी सफलता थी। इस लम्बे संघर्ष में बिजौलिया के किसानों को बड़ी-बड़ी कुर्बानियां देनी पड़ीं। सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को जेल के अलावा अनेक शारीरिक यातनाए झेलनी पड़ीं। देश के इतिहास में यह अपने ढ़ंग का अनूठा किसान आंदोलन था जो राज्य की सीमाएं लांघकर पड़ोसी राज्यों में भी फैला। इस आंदोलन ने राजस्थान की रियासतों को एक नयी चेतना प्रदान की। आगे जाकर मेवाड़, शाहपुरा और बूंदी आदि रियासतों में जो प्रजामण्डलों की स्थापना हुई, उनकी पृष्ठभूमि में यही किसान आंदोलन था। इस आंदोलन ने वर्माजी जैसे तेजस्वी नेता को जन्म दिया जो आगे जाकर राजस्थान के राजनीतिक आंदोलन के एक प्रमुख कर्णधार बंने।

स्वाभिमान इस आन्दोलन की पहचान थी-

पथिक जी के नेतृत्व में बिजौलिया में जो किसान आन्दोलन चला, स्वावलम्बन और स्वाभिमान इस आन्दोलन की पहचान थी। लम्बे समय तक चले इस आन्दोलन में कई ऐसे अवसर आये, जब बड़े से बड़ा खतरा उठा कर भी किसानों ने अपने स्वाभिमान की रक्षा की।

एक रात्रि को चार बजे गांव मांजी खेड़े के सर्वश्री नारायणजी, लक्ष्मणजी, रुपचन्दजी आदि के मकानों के दरवाजों पर पहरा बिठा दिया गया। पशुओं और मनुष्यों का निकलना बन्द कर दिया गया। वे लोग उन्हें गिरफ्तार कर बिजौलिया ले जाना चाहते थे। जैसे ही यह समाचार अन्य गांवों में पहुंचा, हजारों की संख्या में किसान वहां आकर इकट्ठे हो गए, जहां ठिकाने के कर्मचारी उन्हें गिरफ्तार करने बैठे थे। ठिकाने के कर्मचारियों में पहले तो शहने तथा कुछ सिपाही ही थे परन्तु बाद को वहां के बड़े अहलकार मुंशी मुहम्मद नजीम, जो उस समय ठिकाने के कामदार थे, दो सौ आदमियों को लेकर इस स्थान पर आ पहुंचे। परन्तु हजारों किसानों के वृहद समूह को देखकर वे बाहर ही ठहर गए। दोनों पक्षों में लम्बी बहस चलती रही। 24 घण्टे इसी प्रकार वहां रहने के बाद दूसरे दिन प्रातःकाल सबके सब वापस चले गए। किसानों को पकड़ कर उनसे बेगार कराने की इच्छा सफल नहीं हो सकी।

विजय सिंह पथिक देशी राज्यों की प्रजा को सामंती जुल्म और अत्याचार से मुक्ति तो दिलाना चाहते थे किन्तु इसके लिए ब्रिटिश हकुमत से सहायता या सहयोग लेना उन्हें स्वीकार नहीं था। जहां अन्य देशी राज्यों के राजनैतिक कार्यकर्ता अपने-अपने राज्यों में भारत सरकार के हस्तक्षेप की अपेक्षा करते थे, वहीं पथिक जी भारत सरकार

के हस्तक्षेप के घोर विरोधी थे।

राजपूताना के एजेंट हालैण्ड तथा भारत सरकार के विदेश विभाग के अधिकारियों का यह मत बन गया था कि बिजौलिया किसान पंचायत से अब शीघ्र समझौता कर लेना चाहिए क्योंकि भारत सरकार को यह निश्चय हो गया था कि यदि यह आन्दोलन चलता रहा तो समस्त राजपूताने (राजस्थान) में किसान आन्दोलन उग्र हो उठेगा। अस्तु, मेवाड़ सरकार को लिखा गया कि बिजौलिया आन्दोलन को समाप्त करने के लिए पंचायत से शीघ्र समझौता कर लिया जाय।

4 फरवरी, 1922 को ए०जी०जी० हालैण्ड की ओर से किसान पंचायत को यह पत्र प्राप्त हुआ कि 'हम किसानों के कष्टों को मिटाने के लिए उनके पास आये हैं', अतः पंचायत के प्रतिनिधि हमारे सामने अपने कष्टों को रखने के लिए उपस्थित हों। जब यह पत्र मिला तो पथिकजी की नीति के अनुरुप ही पंचायत ने उत्तर लिख भेजा कि यह लड़ाई हमारे और रियासत के बीच है। अतः आपसे (तीसरी शक्ति) हम फैसला कराना नहीं चाहते।

इस पर मेवाड़ राज्य के मंत्री श्री प्रभाशचन्द्र चटर्जी ने पंचायत को लिखा कि हालैण्ड मेवाड़ राज्य की ओर से प्रतिनिधि हैं और मैं मेवाड़ राज्य का मंत्री आपको बातचीत के लिए निमंत्रण दे रहा हूं। अतः आप पधारने का कष्ट करें। इस पर पंचागत की ओर से प्रतिनिधियों को भेजने की स्वीकृति दी गई और उसमें यह भी लिखा गया कि यदि हमें सम्मानपूर्वक अपने कष्टों की कहानी कहने दी गई, तब तो ठीक है, अन्यथा हम वार्ता में भाग लिए बिना ही वापस लौट आयेंगे। साथ ही किसान पंचायत ने मेवाड़ राज्य के मंत्री प्रभाशचन्द्र चटर्जी को यह भी लिखा कि हम सन्धि चर्चा में तभी भाग लेगें जबकि राजस्थान सेवा संघ के प्रतिनिधि को भी आमंत्रित किया जाय।

5 फरवरी, 1922 को प्रातःकाल दस बजे बिजौलिया के बाहर तालाब के पास बाग में खुले मैदान में सन्धि-परिषद् की बैठक आरम्भ हुई। वह दृश्य बिजौलिया ही नहीं राजस्थान के इतिहास में अभूतपूर्व था। ऊपरमाल अंचल में यह समाचार अग्नि की तरह तेजी से फैल गया कि अजमेर से ए०जी०जी० ठिकाने और पंचायत में समझौता कराने आये हैं। समस्त ऊपरमाल अंचल की जनता मानो उस बाग में उमड़ पड़ी। नदी की धाराओं के समान सब ओर से जनता आकर इकट्ठी हो गई। सैकड़ों की संख्या में (लगभग पांच हजार) लोग जमा थे। सत्याग्रही किसानों के मुखों पर विजय का गर्व था, किन्तु उनमें मर्यादा और संयम का अभाव न था। यह राजस्थान में पहला अवसर था कि शोषित और पीड़ित किसान, जो लम्बे समय से राज्य तथा ठिकाने द्वारा कुचले जा रहे थे, सर ऊँचा कर आत्मविश्वास और गर्व के साथ प्रबल शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार, मेवाड़ के महाराणा तथा बिजौलिया के राव साहब के प्रतिनिधि से बराबरी के दर्जे से बातचीत कर रहे थे।

किसानों में सत्याग्रह के फलस्वरुप आश्चर्यजनक साहस, स्वाभिमान, आत्मविश्वास और आत्मगौरव जागृत हो गया था। एक ओर ए०जी०जी० हालैण्ड के साथ मेवाड़ राज्य के प्रतिनिधि तथा उनके समीप ही ठिकाने के प्रतिनिधि कुर्सियों पर बैठे

थे, उनके ठीक सामने सर्व श्री रामनारायण चौधरी, माणिक्यलाल वर्मा, सरपंच मोतीचन्द पटेल और मंत्री नारायन जी पटेल भी कुर्सियों पर बैठे थे। पंचायत ने निमंत्रण स्वीकार करते समय यह शर्तें रख दी थीं कि उनके प्रतिनिधि भी अधिकारियों के समान ही कुर्सियों पर बैठेंगे। ऊपरमाल अंचल की साधारण जनता के लिए यह बहुत अद्भुत और कल्पनातीत दृश्य था। जो किसान अभी तक ठिकाने और राज्य के साधारण कर्मचारियों के समक्ष 'बड़ी हुकम' और 'घणीखमा' कहकर हाथ जोड़े खड़े होने के अभ्यस्त थे, उन्होंने आश्चर्यचकित होकर देखा कि उनके प्रतिनिधि किसान पंच बड़े साहब ए०जी०जी० रेजीडेंट तथा रियासत के दीवान से बराबर के दर्जे पर बात कर रहे हैं और उनके समान की कुर्सियों पर बैठे हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि नेतृत्व राज्य सत्ता के हाथ से निकलकर जनता जनार्दन के हाथ में चला गया है। सैकड़ों किसानों की भीड़ की व्यवस्था ठिकाने की पुलिस के स्थान पर पंचायत के वृद्ध कर्मचारी देवाजी, जो आन्दोलन के समय डाक इस गांव से उस गांव ले जाते थे और जिन्हें सत्याग्रही कोतवालजी के नाम से पुकारते थे, कर रहे थे।

इस माहौल में समझौता की वार्ता आरम्भ हुई। यह निश्चय हुआ कि किसानों की ओर से सरपंच मोतीचन्द पटेल बोलेंगे। श्री मोतीचन्द ने किसानों के अभाव-अभियोगों की सूची श्री हालैण्ड को दे दी। श्री हालैण्ड ने उस सूची को मेवाड़ राज्य के सायर हाकिम श्री बिहारीलाल से पढ़ने को कहा। सायर हाकिम श्री बिहारीलाल एक-एक अभियोग को पढ़ते जाते थे। हालैण्ड साहब एक-एक अभियोग को सुनते जाते, उसके सम्बन्ध में दोनों पक्षों का तर्क सुनते और फिर अपना निर्णय देते जाते। छोटी-छोटी लागतों के संबंध में बहस ही नहीं हुई, वे माफ कर दी गईं। जो बड़ी लागतें थीं, उनके संबंध में बहस हुई। ठिकाने के प्रतिनिधि किसानों द्वारा किसी महत्वपूर्ण लागत को उठा लेने की मांग का विरोध करते तो बहुत लम्बे वाद-विवाद से भरे व्याख्यान देने लगते। श्री हालैण्ड ने उन्हें कई बार झिड़का और कहा कि मुझे लेक्चर नहीं चाहिए। यदि तुम्हारे पास कोई ठोस सप्रमाण दलील इस मांग के विरुद्ध हो तो, पेश करो। उधर किसानों के प्रतिनिधि सरपंच मोतीचन्द छोटा सा निश्चित उत्तर देते और अपने पक्ष के तर्क उपस्थित कर चुप बैठ जाते। हालैण्ड ने उनकी बहुत प्रशंसा की और विपक्षियों को उनसे पाठ पढ़ने को कहा। यदि हालैण्ड साहब कोई बात पूछना चाहते तो मोतीचन्द उसका उत्तर देते। जब हालैण्ड साहब ने अपना पाइप निकालकर उसे जलाया तो सरपंच मोतीचन्द ने भी अपनी चिलम सुलगाई और तम्बाकू पीने लगे। किसानों में समता की भावना और आत्म-विश्वास इस सीमा तक बढ़ गया है, यह देखकर सभी लोग आश्चर्य चकित थे। आन्दोलन ने किसानों में गजब का साहस, निर्भयता और आत्म-विश्वास उत्पन्न कर दिया था।

स्रोत- बिजौलिया किसान आंदोलन का इतिहास
लेखक- शंकर सहाय सक्सेना तथा डॉ० पदमजा शर्मा
प्रकाशक- राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

मेरे जीवन के संस्मरण : विजय सिंह पथिक

अपने जीवन के आखिरी दिनों में पथिक जी ने संस्मरण लिखने प्रारम्भ किये थे, किन्तु वे इसके कुछ ही पृष्ठ लिख पाये थे कि उनका अंतिम समय आ गया। संस्मरणों के ये पृष्ठ पथिक जी के बाल्यकाल और उनके परिवेश को समझने में बहुत सहायक है। पथिक जी ने अपने परिवार, रिश्तेदार और मित्रों के बारे में विस्तार से लिखा है। डॉ० भोपाल सिंह द्वारा लिखित और सम्राट मिहिर भोज गुर्जर विकास सोसाइटी द्वारा प्रकाशित 'क्रान्तिवीर विजय सिंह पथिक' पुस्तक में संकलित इन संस्मरणों के अंश हम यहाँ ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर रहे है। - लेखक

मुझे अपने जन्म का सन् सम्वत तो याद नहीं। शायद जन्मपत्री बनाई ही नहीं गई। यदि बनाई होगी तो मेरी जानकारी में नहीं आई। मेरे पिता का मेरे शैशवकाल में ही देहान्त हो गया था। हां मेरा नाम भूपसिंह था और कुटुम्बियों के कहने के अनुसार मेरा जन्म होली के दूसरे दिन प्रातः 4 से 5 बजे के बीच में हुआ था।

मेरे पिता श्री हमीरसिंह बाल्यकाल में ही दिवंगत हो गये थे। हमारा घर बहुत गरीब स्थिति में था। कुल पच्चीस बीघा के लगभग जमीन थी। उस पर भी पिता को खेती के कार्यों का अभ्यास नहीं था और वह अपने को नई परिस्थितियों के अनुकूल नहीं बना सके थे। परन्तु मेरी माता कमल कुंवरी बड़े जीवट की महिला थीं। पिता ताजपुर नामक गांव के एक पड़ाव का प्रबंध करते थे जो पहले से ही उनके अधिकार में ठेके पर था। उससे आमदनी भी अच्छी हो जाती थी परन्तु अधिक खर्चीला स्वभाव होने के कारण वे प्रायः उसको स्वयं ही खर्च कर डालते थे। इन परिस्थितियों के कारण मेरे बड़े भाई नयनसिंह को भी नहीं पढ़ाया जा सका।

हम दोनों भाईयों से बड़ी हमारी एक बहिन थी। नाम था मुहर कँवर। उसे अवश्य हमारे पिता ने स्वयं ही हिन्दी पढ़ाई थी। उसकी उस समय तक शादी नहीं हुई थी। पिता का देहान्त हो जाने से शादी का प्रश्न और कठिन हो गया था क्योंकि छोटी उमर में ही शादी कर दिये जाने का रिवाज होने के कारण बड़ी उमर के लड़के-लड़की उस इलाके में कठिनाई से मिला करते थे। एक और बाधा थी। हमारे गांव तथा आस-पास के क्षेत्र कुछ कारणों से, जिन पर आगे प्रकाश डाला जाएगा, अंग्रेजी शासन और उससे सहयोग करने वालों के कड़े विरोधी थे। जबकि भांटियों और जाटों आदि में से लोग सेना और दूसरी सरकारी नौकरियों में भर्ती हो रहे थे और काम कर रहे थे, तब हमारे क्षेत्र के लोग उन्हें हेय दृष्टि से देखते थे।

फिर भी इसी वर्ग में से, कुटुम्बियों ने मेरी बहिन के लिए वर चुना। सिकन्द्राबाद के पास निजामपुर गांव के एक धर्मसिंह नामक भाटी युवक थे। यह मैट्रिक

तक अंग्रेजी पढ़े थे। फारसी के भी विद्वान थे। रेलवे में सब-इंसपैक्टर थे। वेतन सत्तर रुपये मासिक था। उनके कुटुम्बी भी सेना में अच्छे ओहदों पर थे। मेरी माता ने पहले इस सम्बन्ध का विरोध किया परन्तु आखिर में वृद्धों के आग्रह के सामने झुकना पड़ा। अस्तु अन्त में बहिन का विवाह हो गया। कुछ दिनों के लिए मैं भी बहिन के साथ गया एवं फिर उसी के साथ लौट आया। इसी बीच बहिन ने मुझे हिन्दी पढ़ाना शुरु कर दिया।

यद्यपि घर गरीब था, तथापि मुझे उस गरीबी का अनुभव बहुत कम होता था। इसका एक कारण यह भी था कि मेरे ऊपर सारे कुटुम्बियों का विशेष स्नेह था। मेरी माँ को तो न जाने क्यों विश्वास था कि मैं कुछ होनहार निकलूँगा इसलिए वह मुझे पढ़ाने को बहुत लालायित थी। वह मेरे खाने-पीने की भी विशेष फिक्र रखती। सुबह दही बिलोने के पहले मेरे लिए कटोरा भर कर वहीं अलग रख देती। मट्ठा भी पीछे के कुछ घृत कणों से मिश्रित अलग रख दिया जाता। इसी प्रकार और बातों में मुझे कोई कमी अनुभव न होने दी जाती थी.। गांव के वृद्धों में मेरे एक ताऊ (पिता के बड़े भाई) जो विशेष बुद्धिमान और प्रतिष्ठित थे, उनका भी मेरे प्रति विशेष स्नेह था।

मनुष्य के जीवन और चरित्र का निर्माण उस वातावरण और वायुमण्डल द्वारा होता है, जिसमें वह रहता और विचरण करता है। इसके अतिरिक्त बाल्यावस्था में कोरे मस्तिष्क पर जिन बातों की गहरी छाप पड़ती है, वे प्रायः जीवन पर अपना प्रभाव उस पर रखती हैं। इसी दृष्टि से यह आवश्यक प्रतीत होता है कि मैं संक्षेप में उन परिस्थितियों का वर्णन कर दूं, जिनके संस्कारों ने ही विकसित होकर आगे मुझे अपने जीवन-कार्यों में दिशा सुझाने का कार्य किया।

हमारा कुटुम्ब काफी बड़ा था। मेरे पिता सात भाई थे। जिनमें एक को छोड़कर सबके काफी संतानें थीं। इस प्रकार प्रायः सौ व्यक्ति एक ही कुटुम्ब के थे। इनमें से छः भाई उस समय जीवित थे। मेरे पिता उनमें तीसरे थे। उनसे बड़े दो भाई जीवित थे। सबसे बड़े का नाम नवल सिंह था। उनसे छोटे महबूब सिंह गम्भीर होते हुए भी बहुत व्यवहार-दक्ष थे। उनके दाढ़ी थी जो उन्हें खूब फबती थी। ललाट चौड़ा और चेहरा भी सुंदर था। खूब साफ-सुथरे रहते थे। उनका प्रभाव गांव में सबसे अधिक था। कारण उनमें कई विशेषताएं थी- छोटे, बड़े, धनी, निर्धन, यहां तक कि गांव का जमींदार भी, उनकी आज्ञा के सामने सिर झुकाता था।

यह दोनों वृद्ध प्रायः दिन रात चौपाल पर ही रहते थे। विशेष अवसरों को छोड़कर केवल शाम को घूमने निकलते थे। बड़े ताऊ प्रायः गांव के बाहर कालिन्दी नदी, जो लगभग एक मील की दूरी पर थी, तक चक्कर लगाते थे। छोटे ताऊ एक चक्कर प्रायः एक पहर दिन चढ़े गांव का लगाते थे और फिर शाम को गांव भर के झगड़े, लेन-देन से लगाकर, नफा-नुकसान, मारपीट आदि तक के मामले उन्हीं के पास आते थे और वे ही निपटाते थे। कोई अधिक गम्भीर मसला होता था तो उसकी पेशी शाम को सबकी उपस्थिति में रखी जाती।

चौपाल पंचायती स्थान होता था। प्रायः आठ-दस फुट ऊँचा चौकोर चबूतरा बनाकर उसके एक-तिहाई हिस्से पर मकान बनाये जाते थे और दो भाग चौक या आँगन

रक्खा जाता था। बड़े गांव में प्रत्येक मुहल्ले की अलग चौपाल थी। वैसे हर जाति की भी उनके मुहल्लों में अलग चौपाल होती थी। भंगी, चमार तक अपनी चौपाल रखना जरुरी समझते थे, और रखते थे। परन्तु एक चौपाल सारे गांव की मुख्य या 'बड़ी चौपाल' कहलाती थी। इस बड़ी चौपाल पर ही अधिकतर गांव के झगड़ों का निर्णय होता था। इसी की छत पर दो बड़े नगाड़े रहते थे। इसी में गांव का पंचायती बाजा जिसमें बड़े-बड़े ढोल (ढप) चंग, झांझ, घड़ियाले और बिगुल के समान 'तुरही' रक्खी रहती थी। कहा जाता था कि पहले वही गांव का शस्त्रागार भी रहता था, जिसमें सब तरह के हथियार, गोली बारुद इत्यादि रखे जाते थे। यह शस्त्रागार चौपाल के चबूतरों में बने तहखानों में रहते थे। परन्तु मेरे बाल्यकाल में यह शस्त्र इत्यादि जब्त हो चुके थे। हां, छिपाकर लोगों ने कुछ हथियार उस समय भी रख लिए थे। इसलिए गदर के बाद जितनी भी चौपालें बनीं, उनमें प्रायः तहखाने न बना कर ठोस चबूतरा ही बनाया जाता था।

चौपालें गांव की आर्थिक स्थिति के अनुसार कच्ची और पक्की दोनों प्रकार की बनाई जाती थीं। कहीं-कहीं दो-दो मंजिल की और कलापूर्ण भी होती थीं। उनमें ताखे और अलमारियां काफी बनाई जाती थीं। प्रायः प्रत्येक जाति का एक हुक्का रहता था, क्योंकि चौपाल पर सबको हुक्का पीने का अधिकार था। केवल गुरुजनों के सामने छोटे हुक्का नहीं पीते थे।

चौपाल पर प्रत्येक गृहस्थ को कम से कम एक चारपाई, अच्छी हालत में रखनी पड़ती थी और नित्य प्रति एक छंटाक कुटी तम्बाकू लाकर पंचायत के थैले में डालनी पड़ती थी। चौपाल के लिए कंडे आदि उसी प्रकार स्त्रियां नित्य डालती थीं, जिससे वहां के अलाव में हरदम अग्नि बनी रहती थी। पानी का इन्तजाम भी स्त्रियां ही क्रम से करती थीं। इसी प्रकार से गांव का नाई नियमित रुप से पंचायत-गृह आदि की सफाई और रोशनी करता था।

पंचायत घर (चौपाल) के ही एक कक्ष में अविवाहित युवकों के सोने की व्यवस्था रहती थी। प्रौढ़ गृहपति भी प्रायः चौपाल पर ही सोते थे। यह नियम था कि घर पर कोई हुक्का न पिये। इसलिए प्रायः भोजन के बाद मुहल्ले भर के लोग चौपाल पर एकत्र हो जाते थे। शाम को सारे गांव के मुखियों की हाजरी बड़ी चौपाल पर अनिवार्य थी। यदि कोई मामला न होता तो हुक्का पीकर थोड़ी गपशप करके चले जाते थे। चौकीदार तथा नाई को भी उपस्थित होना पड़ता। किसी के यहां मेहमान आये तो वे भी चौपाल पर ठहराये जाते। जो अपरिचित अतिथि आते, वे भी वहीं ठहराये जाते। अपने-अपने मेहमानों के भोजनादि की व्यवस्था तो सम्बन्धित व्यक्ति करते ही, अपरिचित अतिथियों के भोजन की व्यवस्था जिस घर का नम्बर होता, उसके यहां गांव का मुखिया कहला देता और वह कराता। गांव में आये प्रत्येक व्यक्ति का आतिथ्य करना अनिवार्य धर्म माना जाता था। कोई भोजन करके आया हो तो उसको भी केवल पानी पिलाना बुरा समझा जाता। कम से कम कुछ गुड़ या शक्कर के साथ पानी पिलाया

जाता।

चौपाल पर रक्खे नगाड़े बिना प्रधान की आज्ञा नहीं बजाए जाते थे। वे जब बजाए जाते, तब प्रत्येक बालिग व्यक्ति का सब काम छोड़ कर और कोई न कोई शस्त्र लेकर तत्काल पहुँच जाने का अनिवार्य नियम था। उसका उल्लंघन होने पर पंचायत से दण्ड भी होता था। चौपाल के पास ही मन्दिर होता था और उसी में गांव का स्कूल होता था। पुजारी को मन्दिर की जमीन के अलावा पढ़ाने के बदले में क्रम से प्रत्येक घर से नित्य भोजन भिजवाने का नियम था और विशेष अवसरों पर अतिरिक्त भेंट दी जाती थी। बहुत करके इसी के पास और कहीं-कहीं गांव के बाहर किसी भाग में अखाड़ा होता था। उसके शिक्षक को भी उसी तरह भूमि, सीधा, भेंट आदि दी जाती थी और वह कुश्ती लाठी चलाना आदि सिखाता था। उस समय हमारे गांव में परशादीलाल पुजारी ही शिक्षक था। सीखे हुए लोगों की कुश्तियां आदि खास-खास त्यौहारों पर होती थीं। चाँदनी रात्रि में कबड्डी आदि खेल तो मानो ग्रामीण जीवन के अंग थे। जिनमें बूढ़े, जवान, बालक सब ही भाग लिया करते थे। इसी तरह 'कुलाम लकड़ी' आदि बहुत से खेल पेड़ों पर खेले जाते थे। मुझे बतलाया गया था कि पहले गढ़मुक्तेश्वर में (गंगा स्नान का कार्तिक पूर्णिमा मेला) अन्तर्वेदी खेलों के मैच और शस्त्रास्त्र प्रतियोगिताएं भी हुआ करती थीं।

प्रायः किसी बात पर झगड़ कर किसी आगामी त्यौहार पर कुश्ती लड़ने की शर्त बद आते थे। घर और पड़ौस वालों को मालूम होने पर उसे जिताने की कोशिश की जाती। उसे खाने-पीने और कुश्ती के अभ्यास की पूरी सुविधाएं दी जातीं। मैनें देखा कि गरीबी में फंस जाने पर भी लोग इन बातों में स्वभाववश काफी उदार थे। सन्तान को बलिष्ठ बनाने का लक्ष्य तो सबके लिए साधारण बात थी। एक विशेष बात और थी- बड़ी-बड़ी घोड़ियों के रखने का रिवाज था। प्रायः एक अच्छा गृहस्थ एक अच्छी घोड़ी रखता था। यह एक प्रकार का सहायक धंधा था। कहा जाता था कि मुस्लिम काल में सेना के लिए घोड़े उसी क्षेत्र से खरीदे जाते थे। पीछे अंग्रेजों ने भी उसी पद्धति को अपनाया। अतः यह प्रथा उस समय तक जीवित थी। प्रत्येक घोड़ी का बच्चा प्रतिवर्ष दो से तीन हजार रुपये तक में सैनिक अधिकारियों द्वारा नुमाइश से खरीद लिया जाता था। इसके अलावा अच्छे जानवरों पर ईनाम भी दिया जाता था। इससे लोगों को घोड़ों की नस्ल की पहचान, उनके रोगों के ईलाज और उनके पालन की पद्धति का काफी ज्ञान था। साथ ही इसके फलस्वरुप प्रत्येक गांव में काफी अच्छे घुड़सवार तैयार हो जाते थे।

इसके अतिरिक्त रथ रखने की प्रथा थी। कम से कम प्रत्येक सम्पन्न गृहस्थ तो रथ रखता ही था। विवाह बारात में भी अधिकतर रथ और घोड़ों का प्रयोग होता था और वे सब जातियों के विवाह शादी में भेजे जाते थे। केवल उनके साथ जाने वाले आदमी और घोड़े या बैलों की खुराक ले जाने वाले को देनी पड़ती थी। ऐसे अवसर पर इन चीजों का इनकार करना निन्दनीय समझा जाता था। इस प्रकार अंग्रेजों के आने से पूर्व की स्थिति की दृष्टि से प्रत्येक गांव एक अच्छी सैनिक इकाई होता था। सामाजिक

जीवन काफी घुला मिला था। चौपाल पर शेष तो किसी प्रकार की छुआछूत बरती ही न जाती थी। वैसे भी खाने-पीने को छोड़कर शेष बातों में किसी को हेयता का अनुभव कराना बुरा माना जाता था। किसी भी जाति या धर्म के लोग हों, बड़ाई-छुटाई के हिसाब से उनके रिश्ते सम्बन्ध आदि थे। उदाहरण के लिए हमारा पातीदार चमार था, जिसे हम 'काका' कहा करते थे। गांव का जमींदार 'सैयद' मुसलमान था, परन्तु हम उसे फूफा कहकर संबोधन किया करते थे। यही स्थिति औरों की थी। ये बातें और संबोधन केवल कहने मात्र के न होते थे। उनके अनुसार ही व्यवहार भी होता था। मेरी बहिन से मिलने उसकी सुसराल में हमारे गांव का एक मुसलमान आया और मना करने पर भी उसे यह कहकर कुछ कपड़े दे गया कि यह हमारी लड़की है। बहुत आग्रह करने पर भी उसने इसी आधार पर पानी तक नहीं पिया कि हमारे यहां बेटी के यहां की चीज नहीं ली या ग्रहण की जाती। ऐसी घटनाऐं प्रायः होती ही रहती थीं। कभी-कभी एक-दूसरे के मेहमानों को परस्पर दावतें दी जांती थीं। प्रायः कोई भी जाति लड़के या लड़की की शादी के सिलसिले में रुपया लेना उचित नहीं मानती थी। घूंघट का रिवाज अवश्य था, परन्तु पुरुषों के अधिकतर चौपाल में ही बैठने उठने की प्रथा होने से स्त्रियों को बाहर के अलावा अपने घर तथा बाखल में भी काफी स्वच्छंदता रहती थी। हाँ, जेवर पहनने का रिवाज खूब था, वह भी विशेषतः विवाह आदि के अवसरों पर। दोपहरी में बहुधा स्त्रियां चर्खा कातती थीं। खेती का काम स्त्रियां बहुत कम करती थीं, परन्तु खेत पर भोजनादि पहुँचाना उन्हीं का काम था। पुनर्विवाह और विधवा विवाह की प्रथाएँ जारी थीं।

विवाह और मृतक भोजों में व्यय की स्वीकृति पंचों से लेनी पड़ती थी और इन कामों के लिए कर्ज नहीं लेने दिया जाता था। न्योते की प्रथा थी और उसमें सब जातियों के लोग भाग ले सकते थे। अर्थात् प्रत्येक विवाह या मृतक भोज में प्रत्येक व्यक्ति या गृहस्थ एक से ग्यारह रुपये तक अपनी इच्छानुसार देता था जो बाकायदा लिखा जाता था। जब न्योता देने वाले के यहां ऐसा अवसर उपस्थित होता था, तब जिन लोगों के यहां उसने न्योते के रुपये जमा कराये थे, उनको उसके यहां दुगुने रुपये जमा करने पड़ते थे। इससे ऐसे अवसरों पर लोगों को बड़ी सुविधा होती थी। बीच-बीच में एक-एक, दो-दो रुपये दे देना भारी मालूम नहीं पड़ता था और अवसर आने पर हजारों रुपये इकट्ठे हो जाते थे। बहुत से लोगों को तो सब खर्च कर चुकने पर भी रकम बच जाती थी, जिसे वे फिर और जगह न्योता चढ़ाने के ही काम में लेते थे। यह एक प्रकार की बिना ब्याज की 'बैंकिग प्रथा' थी। इसी प्रथा का विकसित रुप सेनाओं में यह प्रथा थी, जिसके अनुसार किसी भी सैनिक के विवाह या ऐसे अन्य अवसर पर पूरी कम्पनी के लोग एक-एक रुपया एकत्र कर देते थे। इसलिए पंच लोग खर्च की स्वीकृति देते हुए 'न्योता' की सम्भावित आमदनी की भी जांच करते थे। कहा जाता है कि गदर के बाद इस प्रथा का प्रयोग, लोगों को फिर बसाने के लिए भी किया गया किन्तु लोग इतने स्वाभिमानी थे कि नगण्य संख्या ने ही उसका उपयोग किया।

न्योता केवल नकद रुपयों में ही नहीं लिया दिया जाता था। आटा, दाल, मैदा,

चावल, घी आदि के रुप में भी दिया-लिया जाता था। इसे 'बान' कहते थे। यह सब देने के लिए महिलाऐं ही गाती हुई जाती थीं। आगे-आगे ढोल बजता जाता था। जिसके यहां 'बान' जाता, उस कुटुम्ब व पड़ोस की महिलाएं 'बान' का गांव के बाहर तक स्वागत करने और फिर पहुँचाने आती थीं।

इसी प्रकार ऐसे अवसरों पर सारे कार्य भी परस्पर सहयोग द्वारा ही होते थे। ईंधन इकट्ठा करना, आटा, मैदा, दालें, इत्यादि तैयार करना, बारात या भोजन में आने वाले व्यक्तियों के लिए खाद्य पदार्थ बनाना, उनका आतिथ्य करना आदि सारे काम में गांव के स्त्री-पुरुष भाग लेते थे। मजदूरी का एक पैसा भी खर्च न करना पड़ता था।

पंचायती नियम था कि प्रत्येक व्यक्ति और गृहस्थ अपने घर की ही नहीं अपने घर के सामने की सफाई स्वयं करेगा और सब नियमित रुप से करते थे। शेष भागों की सफाई भंगी करते थे। इस प्रकार सारा गांव और उसके गली, रास्ते आदि बिलकुल स्वच्छ रहते थे। इसी प्रकार प्रत्येक घर के बाहर दरवाजे के दोनों ओर दो ताख बनाने की पद्धति थी। उनमें दीपक रखना जरुरी माना जाता था। इससे सारे गांव में रोशनी भी नित्य हो जाती थी।

मैं बता चुका हूँ कि मेरे ताऊ मुझे भी कई बार अपने साथ ले जाते थे। मैं इस बीच में घर पर पढ़ने के बाद मालागढ़ के स्कूल में भर्ती हो गया था। वे प्रायः मुझे इसलिए भी ले जाते थे कि कहीं लिखने, नोट करने आदि का काम पड़े तो मुझसे काम ले लें। साथ ही कभी-कभी कहते कि बड़ा होने पर यह सब काम तुझे करने पड़ेंगे, इसलिए अभी से सीखता जा। उनकी ऐसी बातों से मैं भी कम से कम अपने गांव जाने को उत्सुक रहता। फिर अवकाश के समय देखी हुई बातों को समझने के लिए उनसे शंका समाधान भी करता। वे इससे प्रायः प्रसन्न होते एवं दूसरे लड़कों में कुछ सीखने की उत्सुकता के अभाव की निंदा करते। यह प्रशंसा भी इस ओर मेरी रुचि को बढ़ाती थी। मैने देखा कि उनके गांव में घूमने का उद्देश्य बहुत बारीकी से व्यवस्था सम्बन्धी प्रत्येक बात को देखने का होता था। वे प्रत्येक गली कूचे में जाते। सफाई आदि में कोई त्रुटि होती तो उसी समय मकान वालों को बुला कर कारण पूछते। किसी को समझाते, किसी को डांटते, परन्तु उसी समय वह कार्य ठीक कराते।

इसके अलावा सबसे उनके स्वास्थ्य व उस दिन के कार्यक्रम आदि के बारे में पूछते। यदि कोई व्यक्ति बीमार मिलता तो वे जाँच कर जो भी पड़ोसी समय निकाल सकते, उनके जिम्मे उसके लिए दवा लाना और उसके पास उपस्थित रह उसकी सेवा करने आदि के लिए उन्हें नियत करते एवं स्वयं जाकर हकीम जी से चिकित्सा की व्यवस्था कराते। इसी प्रकार और भी किसी की कोई कठिनाई होती वे, उनके आने की बाट देखते रास्तों पर बैठ जाते। छोटी से छोटी बात भी उनकी दृष्टि से न बचती थी। कोई बिना लाठी लिए घूमता तो वे उसे हरदम लाठी रखने की शिक्षा देते और प्रायः यह दोहा सुनाते-

"जल टोहन, विषधर हनन, बैरी झाड़न दन्त ।
कान बराबर कामिनी सदा रखिए कन्त ।।"

(अर्थात् नदी या पोखरे, तालाब, को पार करते समय गहराई जानने के लिए, सांप को मारने के लिए, दुश्मन को परास्त करने के लिए, कान की लम्बाई के बराबर लाठी सदैव पास रखनी चाहिए।)

वे प्रत्येक को वीर बनने की सलाह देते और प्रायः यह कहकर उन्हें उत्साहित करते कि हमारे गांव में चमार, भंगी और बनिए भी फिरंगियों से ज्यादा बहादुर होते हैं। किसी वेशभूषा में कोई अटपटापन या असाधारणता होती तो उसे टोकते। कोई सबल निर्बल को दबाता तो उससे भी जा भिड़ते। वह समान वेशभूषा और रहन सहन के बड़े पक्षपाती थे। इस कारण गांव के जमींदार भी परेशान रहते थे। वे औरों से उत्कृष्ट वेशभूषा रखना चाहते और उनकी भर्त्सना करते। उनका दबदबा और प्रभाव इतना था कि विरोध करने का जमींदार को भी साहस न होता था। गांव भर उन्हें पिता की तरह मानता था।

बिना पढ़े-लिखे होने पर भी उनकी स्मरण शक्ति इतनी तेज थी कि गांव भर में जितने कामों की व्यवस्था आदि वह कर आते, दिन भर में दो-तीन बार प्रत्येक की जांच कराते कि कार्य ठीक उसी प्रकार हो रहा है या नहीं। बीमार व गरीब की सहायता और गांव भर में एकता रखना, ये तीन बातें उनकी विशेष दिलचस्पी की थीं। कोई चमार या कुम्हार भी बीमार होता तो वे उसी तरह उसकी फिक्र रखते, जैसे अपने कुटुम्बी की। स्वयं भी वह उसे दिन और रात में कई बार सम्हालते। लोग सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा के बहुत पक्षपाती थे। प्रायः उन दिनों तीन-तीन पीढ़ी तक के लोग शामिल ही रहते और काम करते थे। कभी किसी घर में नई बहुओं की वजह से अलग होने का प्रश्न उठता तो सारे गांव में उसकी निंदा होती। एक-दो बार ऐसे प्रश्न पंचायत में भी आये। वहां इसके कुछ सैद्धान्तिक पहलू भी सुनने को मिले। पंचों की बहस का सार यह था कि व्यक्तिगत जीवन और कमाई जीवन को कठिन और व्यस्त बना देती है। वह व्यक्ति गांव और समाज के सार्वजनिक कर्तव्य निभा नहीं पाता। फिर वह दिन-रात घर के काम-काज का कीड़ा बन जाता है। साथ ही लालच बढ़ता है और परस्पर सौहार्द की जगह ईर्षा, द्वेष, स्वार्थ बढ़ते हैं, इससे सबको मिलकर ही कमाना और भोगना चाहिए। इसके सिवाय भिन्न स्वभाव के लोगों से मिलकर रहने और काम करने की उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है और ऐसा आदमी गांव का प्रबंध करने योग्य नहीं रहता। गांव का काम सबको करना ही चाहिए, क्योंकि गांव की भलाई-बुराई में ही व्यक्ति की भलाई-बुराई है।

इसी प्रकार, समान वेशभूषा और मकानों की बनावट में साम्य का भी पूरा ध्यान रखा जाता था। हाँ, मन्दिर और सार्वजनिक स्थान अच्छे से अच्छे और यथासाध्य पक्के, ईंट, चूने के बनाये जाते थे। गांव में जितनी विधवायें, नाबालिग और अपंग आदि होते थे, जिनके पास भूमि तो थी परन्तु बैल आदि साधन न होते थे, उनके काम की जिम्मेदारी भी पंचायत की होती थी। ठीक समय से पूर्व ही पंचायत से प्रस्ताव करा कर

प्रधान गांव में ऐलान करा देता था कि अमुक दिन अमुक के खेत जोते, बोये या सींचें जायेंगे। उस दिन कोई अपना काम न करता। सब अपने हल-बैल लेकर उनके खेत बो देते। जमीन के मालिक को सिर्फ उनको भोजन कराना पड़ता। इसी तरह और कामों की भी व्यवस्था कराई जाती थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि लोग ऐसे पंचायती कामों को अपना पवित्र कर्तव्य समझते थे। उसमें न केवल कोई आनाकानी नहीं करता था प्रत्युत उत्साहपूर्वक योग देता था। साधारण लोगों में विश्वास था कि इन कर्तव्यों के पालन से हमारे यहां अच्छी पैदावार होगी, भगवान प्रसन्न होंगे, आदि। घरों में वृद्ध स्त्रियाँ प्रायः ऐसी बातें और कहानियाँ कहती रहती थीं।

सहयोग पद्धति तो मानों सारे समाज का श्वास प्रश्वास था। मजदूरी की मानो पद्धति ही न थी। लोग मजदूरी और नौकरी को हेय दृष्टि से देखते थे। खेत काटने होते तो मुहल्ले भर के काश्तकार इकट्ठे होकर अपनी दरांती (दांतली) एक चायरे या बोरी में डाल कर खूब हिला देते, फिर किसी अबोध बच्चे से एक-एक निकलवाते। जिस क्रम में दरांतियाँ निकलती थीं, वही क्रम खेतों को काटने का तय हो जाता। जिसका पहला नम्बर आता, उसके यहां सब घरों से दो-दो आदमी खेत काटने जाते। उन्हें एक पूला सेंक कर खाने को दिया जाता। इसी प्रकार वह खलिहान में लाया और तैयार किया जाता तथा घरों पर पहुँचाया जाता। सिल्ला साधुओं के लिए माना जाता था और खेत काटते समय गिरी हुई अनाज की बालें-डागिये वे ही बीन कर ले जाते थे।

गन्ने पेरते समय भी यही ढंग अपनाया जाता। जिसका नम्बर आता, उसके यहां तीन दिन तक हर एक घर से दो मनुष्य जाते। वे ही गन्ना काटते और वे ही पेरते। छिले हुए गन्ने पांच हाथ के रस्से से नाप लिए जाते थे जो आम तौर पर दो आदमियों का काम माना जाता था। गन्ने नापने के बाद प्रत्येक व्यक्ति अपने छीले हुए गन्नों का पत्तीवाला ऊपरी भाग और पांच-पांच गन्ने ले जाता था। वैसे दिन में चाहे जितने गन्ने खाते। उसी क्रम से प्रत्येक घर के दो आदमी जाकर अपने बैलों पर लाद कर एक कड़ाह भर रस निकाल आते थे। रस रात-दिन निकलता रहता था। अपने हिस्से का रस निकाल चुकने पर प्रत्येक को पाव भर गुड़ दिया जाता था। भट्टी झोंकने वाले को एक सेर गुड़ नित्य दिया जाता था। इसी प्रकार सब काम कर लिए जाते थे। मजदूर रखना या मनुष्य का मनुष्य को नौकर रखना बुरा माना जाता था।

इसी प्रकार बढ़ई, लुहार, धोबी, नाई, हकीम, चौकीदार, सिलावट, कुम्हार, चमार, दर्जी, रंगरेज, आदि समाज के सब ही आवश्यक कारीगरों को फसल पर नियत अनाज दिया जाता था। वे प्रत्येक घर की आवश्यकता पूरी करते थे। चाहे कोई कुटुम्ब छोटा हो या बड़ा, कम या अधिक काम, उसके मूल्य का प्रश्न नहीं उठाया जाता था। भावना केवल परस्पर आवश्यकता की पूर्ति की थी। किसान कारीगरों का जीवन व्यय जुटा देते थे और कारीगर अपनी योग्यता समाज को अर्पित कर देते थे। हाँ, रथ आदि विलास सामग्री बनवाने पर कुछ अधिक धान्य देना पड़ता था और लकड़ी देनी पड़ती थी। इससे सुविधा यह थी कि गरीब भी लकड़ी जुटा लेने पर औरों के समान सुख वृद्धि

के साधन जुटा लेता था। पूरे दिन काम करने वालों को भोजन भी कराया जाता था। न किसान कारीगरों को हटा या बदल सकते थे, न कारीगर अपने काम से इंकार कर सकते थे। कोई इसके विपरीत आचरण करता तो पंचायत हस्तक्षेप कर मामला सुलझा देती। यह एक प्रकार से उनकी निर्वाह प्रथा का 'बीमा' था। इसके विपरीत सबको थोड़ी बहुत जमीन भी दी जाती थी। यद्यपि अब गांव की जमीन पर गांव का अधिकार न रहकर जमींदार का था। फिर भी पंचायत का प्रभाव इतना था कि जमींदार उसकी मांग को ठुकरा नहीं सकता था। दीवाली में पंचायत के नियमानुसार एक सप्ताह सब स्त्री-पुरुष चौपाल तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों व रास्तों की मरम्मत में लगाते थे। पनघट के कुओं पर कोई स्नान न कर सकता था।

प्रत्येक गांव में पंचायती अनाज की खसियां होती थीं। इनमें घर खर्च से बचा हुआ अनाज लोग जमा करा देते थे। यह जरुरत होने पर लोगों को छः मास बाद सवाया लौटाने की शर्त पर दिया जाता था। इसी प्रकार चारा, भूसा, करवी आदि का संग्रह रहता था। इसकी व्यवस्था नगरसेठ के हाथ में होती थी। इसके मुनाफे का चतुर्थांश व्यवस्थापक सेठ को और पंचायत को भी उसके बराबर मिलता था। अर्थात् आधा लाभ सेठ और पंचायत में बंट जाता था और शेष जिनका माल होता, उनको मिल जाता था। कहा जाता था कि पहले गांव के कारीगरों की आवश्यकता की पूर्ति के अतिरिक्त बनीं चीजों के विक्रय आदि की व्यवस्था भी नगरसेठ की मार्फत ही होती थी और उसके मुनाफे में भी पंचायत और सेठ दोनों को उपरोक्त हिसाब से भाग मिलता था, परन्तु बाद में यह प्रथा उठ चुकी थी।

बाग भी गांवों की एक विशेषता थी। दूर से ही बागों का दिखाई देना ही इस बात का चिन्ह माना जाता था कि वहां कोई गांव है। आम तौर पर प्रत्येक गांव के चारों तरफ बाग होते थे, जिनमें अधिकतर सीताफल, आम, केले, बड़े-बड़े अमरुद आदि होते थे। वहां जंगल न होने से वे बड़े सुहावने मालूम होते थे। सावन में इनमें प्रायः स्त्रियों के जमघट झूला झूलते थे और ग्रीष्मकाल में बहुत से लोग दोपहरी में वहां विश्राम लेते थे।

फल, दूध, दही और, सब्जी बेचना बहुत बुरा पाप समझा जाता था। इसके अतिरिक्त फलों का प्रायः आधा भाग सारे गांव में बांट दिया जाता था और आधा कुटुम्ब के खाने-पीने में काम आता था। चूंकि फलों में सबको भाग मिलता था, अतः कोई फलों का नुकसान या चोरी न करता था और सब बच्चों को भी ऐसी हरकतों से रोकते थे। इसी तरह शाक कोई भी तोड़ ला सकता था। हाँ जब किसी को आवश्यकता होती तो मांगने पर मुफ्त दिया जाता था। बीमारों के लिए तो कभी-कभी महीने तक दूध आदि के ओसरे (क्रम) बांध दिये जाते थे। यह काम बड़े पुण्य का समझा जाता था। मुसलमानों में भी बीमारों और जच्चाओं के लिए पंचायत से मुफ्त में अनाज या दूध सबसे पहले दिलाया जाता था। यही नहीं, जच्चा के बारे में पशुओ तक के लिए ऐसी ही भावना थी। कुतिया, बिल्ली, गाय, भैंस, घोड़ी आदि कोई भी बच्चा देती, तो उसे पास पड़ोस के लोग कुछ दिनों तक नित्य हलुआ आदि खिलाते।

जमींदार के एक लड़के ने जिसका नाम मुझे जहां तक याद है, अकुलसहान था। अपने बाग के फल, शाक आदि बेचने शुरु कर दिये थे। इसलिए लोग उसकी बुराई किया करते थे कि खाने-पीने की चीज भी बेचता है। ताऊ जी से एक बार मैने पूछा कि ''इन चीजों को बेचने में क्या बुराई है और 'दूध बेचना पूत बेचना' क्यों माना जाता है?'' उन्होंने कहा कि पहले तो घी, तिल, तेल वगैरह भी बेचना पाप समझा जाता था क्योंकि इन्हीं चीजों के खाने से तो आदमी पहलवान बनते है। इनको बेचने का रिवाज पड़ जाये तो लोग एक तरफ जानवरों को अच्छी खुराक नहीं देंगे दूसरी तरफ बच्चों को नहीं खिलायेंगे। इससे जानवर और बच्चे दोनों ही कमजोर होंगे। तब इन चीजों को बेचना बच्चों की तंदुरुस्ती और उन्हें बेचना नही तो क्या है? हम लोग बलवान थे तो तब मुसीबतों में अपनी रक्षा भी कर ली और हर तरह का काम भी कर लिया। कमजोर होते तो क्या होता?

लोगों में यह विश्वास भी गहरा बैठा हुआ था कि जिससे जितना लिया जावेगा, उससे उतना अगले जन्म में चुकाना पड़ेगा। इसलिए इन उदार प्रथाओं का उपयोग भी लोग काफी समय से करते थे और अनावश्यक कभी किसी से कोई चीज नहीं मांगते और न लेते थे। साथ ही जब अवसर और सुविधा होती, तो बदले में लेन-देन से न चूकते थे।

सांस्कृतिक शिक्षा और प्रेरणाएं आम तौर पर लोगों को रामायण, गीता, महाभारत, वेदान्त और उनके पूर्व इतिहास से मिलती थीं। वेदान्ती और उदासी साधुओं का अधिक मान था और प्रायः प्रत्येक गांव में बरसात में एक साधु टिकता था। वेदान्त और गीता को लोग सर्वोपरि मानते थे। महाभारत, रामायण आदि के कथानकों पर बोलचाल की भाषा के काव्य लिखने वाली कुछ मंडलियां थीं जो बारहों महीने घूम-घूमकर गायन द्वारा उनका प्रचार करती रहती थीं। उस जमाने में तीन कवि बहुत प्रसिद्ध थे, जिनके सैंकड़ों शिष्य थे। मेरठ जिले के मेठू सिंह तगा, बुलन्दशहर जिले के सुल्तासिंह गुर्जर और शंकरदान। यह कथायें होली आदि पर प्रत्येक रागों में गाई जाती थीं और एक-एक कथा की अलग-अलग कथानकों पर छपी हुई पुस्तकें भी बिका करती थीं। आल्हा का भी प्रचार था।

इनमें भी दो मुख्य थे, जिन्हें 'तुर्रा' और 'कलंगी' कहते थे। अर्थात् एक दल के गायक अपने ढ़प (ढ़ंग) पर तुर्रा लगाये रहते थे और दूसरे मयूरशिखा के समान कलंगी। इन दोनों में कभी-कभी जवाबी कीर्तन भी छिड़ जाता था। प्रत्येक दूसरे के विरुद्ध व्यंगों से पूर्ण कविताएं गाता। साथ ही यह भी जिद होती कि कोई पीछे न रहे। कभी-कभी महीनों दोनों अपने स्थानों पर डटे रहते और दिन-रात गानों का प्रवाह चलता रहता। पौराणिक, कथानक और कटूक्तियां साथ-साथ चलती रहतीं। एक पार्टी की व्यंगोक्ति तत्काल ही सुन कर लोग दूसरी ओर पहुंचते और वहां तत्काल उसका जवाब तैयार कर गा दिया जाता।

लोगों को ऐसे द्वन्द्वों में खूब आनन्द आता और सारा खर्च खुश होकर बरदाश्त करते। यह प्रचारक काफी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते थे और उनका खूब आतिथ्य किया जाता था। चलते समय कुछ भेंट भी दी जाती थी। यह लोग भी गांव की स्थिति के अनुसार ही कम और अधिक ठहरते थे और भेंट आदि के बारे में कोई विवाद न करते थे। लोगों को वेश्या या नृत्य से घृणा थी। विवाह आदि में भी भजन मंडलियां ही बुलाई जाती थीं। इस प्रचार की बदौलत प्रत्येक गांव में कुछ लोग अच्छे भजनीक बन जाते थे और पढ़े-बे-पढ़े सबको पुराने कथानक याद हो जाते थे।

इन बातों का उनके मानस और चरित्र पर भी काफी प्रभाव पड़ता था। यह आम कहावत थी कि रामायण का लंका काण्ड, आल्हा और महाभारत की कथा जहां होगी, वहां लड़ाई, झगड़े अवश्य होंगे और ऐसा प्रायः होता भी था। इससे स्पष्ट है कि लोगों का अपनी बोलचाल की भाषा में शिक्षण साहित्य हो और लोगों की प्रकृति वैसी बनाई जाये, तो प्रचार बड़ा प्रभावशाली होता है। इन कथाओं में से युवा अपने स्वभावानुकूल और वृद्ध अपने अनुकूल पात्रों की कृतियां और उक्तियां हृदयंगम कर लेते थे और अशिक्षित होने पर भी इतने गम्भीर और विचारशील बन जाते थे कि आज के पढ़े-लिखे और ग्रेजुएट भी नहीं बन पाते। ऐसा ही प्रभाव स्त्री समाज पर स्त्री पात्रों का होता था।

एक कारण उनपर विशेष प्रभाव पड़ने का यह भी था कि वे इन कथानकों को अपने पूर्वजों का ही चरित्र मानते थे, न कि अपने से भिन्न प्रकार के लोगों का। इस प्रथा का एक और लाभ था कि साधारण भीख मांगने वालों को भीख मिलती ही थी परन्तु उनकी समाज प्रतिष्ठा न करता था। भिखमंगे वैसे ही कम होते थे। कारण आमतौर पर जिस जाति का भिखमंगा होता था, उस जाति की बड़ी निंदा होती थी। इसलिए हर एक जाति अपने अपंगों तक को खिलाना-पिलाना अपना धर्म समझती थी और क्रम से खिलाने में उन्हें भार भी मालूम न होता था। वैसे भी प्रायः नित्य किसी गरीब या अतिथि को भोजन कराना कर्तव्य माना जाता था। लोग अकसर कहा करते थे कि खेती के काम में भी पाप होता ही है, कितने ही कीड़े-मकौड़े मरते हैं, उसकी उपज में से रोज थोड़ा पुण्य करते रहना चाहिए। वैसे भी इतने से खर्च को विशेष खर्च नहीं माना जाता था। बात चलने पर लोग कहते कि "भरे कुटुम्ब में एक आदमी का क्या बोझ" !

दूसरी ओर जो लोग भीख मांगते रहते, वे भी प्रचारक बनने का उद्योग करते थे, ताकि उन्हें भी भीख सम्मान से मिले। वे लोग गोपीचन्द, भर्तहरि, भगत पूरनमल, मातृपितृ भक्त आचरण या किसी वीर का छोटा कथानक गाना सीख लेते थे और इस प्रकार समाज के लिए उपयोगी रहते थे।

ऐसे प्रचारकों द्वारा नित्य लोगों के कानों पर पड़ती रहने वाली शिक्षाएं, प्रतिवर्ष आने वाली भजन मंडलियां और होली आदि के गायनों एवं चर्तुमास में साधुओं की शिक्षाएं लोगों को संस्कारी बनाती रहती थीं। वास्तव में यह प्रचार ही जनता के चरित्र निर्माण में सबसे अधिक काम करता था। कथाएं संगीतमय होने से उनकी भाव और चमत्कारपूर्ण उक्तियां लोगों को आसानी से कंठस्थ हो जाती थीं। किसी के विपरीत

आचरण करने पर एक-दूसरे को उन्हें ही दुहराकर उसकी गलतियों को सुझाते थे। फलतः अपने वायदे को पूरा करने के लिए ''प्राण जाय पर वचन न जाय'' प्रायः लोगों की जबान पर रहता। इसी प्रकार-

''पर तिरिया मात समान''

''इकली लकड़ी ना जले, नहीं उजाला होय''

''वह वीर नहीं अन्यायी है, जो हा हा करते कू मारे''

''नारी बालक पर वार करे धोके से विष के सहारे''

''दुर्जन का मुख बाम्बी है, निकसे वचन भुजंग
ताकी औषध मौन है, जहर न व्यापै अंग।''

खाना, कमाना और लड़ना (युद्ध करना) मिलकर ही अच्छा होता है।

''एक लो खाय, एकलुरो, एकलो पहरे सबसे बुरो।'' (अर्थात् जो अकेला खाता है, वह एकलखुरा अर्थात् स्वार्थी है। जो अकेला औरों से अच्छा पहनता है, वह सबसे बुरा आदमी है।)

'' एकलो कहा (क्या) कमावे, कहा बचावे।''

''घर में आयो खाली जाय वाकी लक्ष्मी वही नसाय।'' (अर्थात् अपने घर पर कोई आशा करके भीख या चीज मांगने आवे, उसे खाली हाथ लौटा दे तो ऐसे आदमी की लक्ष्मी नष्ट हो जाती है।)

''स्वार्थ साधु है, ऋषि मुनि जो अपनी ही मुक्ति चाहें।

''लाखों अज्ञान दुःखी जग के, जब भरते हो निस दिन आहें।''

स्वभावतः इनका प्रभाव उनके चरित्र और व्यवहारों पर भी पड़ता था। इस प्रकार उनका चरित्र-निर्माण काफी ऊँचे स्तर का होता था। समाज का वातावरण भी इसमें सहायक होता था। इस प्रकार की उक्तियों के विरुद्ध व्यवहार करने वालों की सब एक स्वर में निंदा करते थे।

यदि गांव में कोई खाने-पीने की चीज बिकने आती तो प्रधान इकट्ठा भाव कर जितनी आवश्यक होती, खरीदकर प्रत्येक घर में भिजवा देता और किस घर से कितना अनाज या पैसा आना चाहिए, यह कहला देता। उसी के अनुसार मूल्य आ जाता। अनेक बार स्त्रियां ही कहला देतीं कि अमुक चीज बिकने आई है। इस संकेत पर भी खरीद ली जाती। अधिक गरीब लोगों का मूल्य भी दूसरों में बांट दिया जाता और इस पर कोई भी कुछ नहीं बुरा मानता था। गांव में कुछ आदमी खासकर जमींदार इस बात के अपवाद भी थे। इसके लिए उनकी निंदा होती। बूढ़े लोग अकसर कहा करते थे कि ''पहले तो जो चीज सबको न मिलती थी, उसे लेना या रखना लोग अपने धर्म से ही बुरा समझते थे, अब कहने पर भी नहीं मानते।'' एक बार मैने भी बड़ी मूर्खता कर डाली, जिसकी स्मृति की मेरे जीवन में प्रायः काफी गहरी छाप रही। उन दिनों पंजाबी व्यापारी गांव में कपड़ा बेचने आया करते थे। यह छः महीने के लिए उधार कपड़ा देते थे। मैं उनके ढ़ंगों से वाकिफ न था। हल्ला सुनकर देखने चला गया। साथ कोई प्रौढ़ साथी न था। नकद पैसे भी न थे। मैं उनकी बातों में आ गया और कुछ कपड़े खरीद लाया।

शाम को जब बड़े भाई और ताऊ आदि को मालूम हुआ तो उन्होंने मुझको डांटा भी और व्यापारियों की बदमासियों का हाल भी सुनाया। मुझे उनकी दलीलें नहीं जचीं, यद्यपि समाज के नियमानुसार कोई उत्तर नहीं दिया।

फिर भोजनादि के लिए हम चौपाल पर गये तब ताऊ ने मुझे प्यार से समझाना शुरु किया। वे इस बात पर जोर दे रहे थे कि गांव में समान वेशभूषा रखनी चाहिए। यदि तुमने नये ढंग से कपड़े पहनने शुरु कर दिये तो दूसरे बच्चों को भी देखा-देखी शौक लगेगा और जो गरीब हैं, उनको दिक्कत हो जायेगी। लोग तुम्हें 'गांव बिगाड़ा' कहने लगेंगे। मैने कहा- सबके पास रथ, घोड़ा, घोड़ी और बाग भी तो नहीं हैं। फिर उन्हें क्यों रखने दिया जाता है ?

ताऊ जी ने कहा- पहले तो जंगल और गांव की सीमा की सारी भूमि पंचायती होती थी और उसमें से हम गरीब-अमीर सबको समान साधनों की सामग्री दे देते थे। अब यह सब नहीं रहा। फिर भी यह गांव के लिए जरुरी है। इसलिए किसी को देने से इन्कार करने का रिवाज नहीं है। जिनके नहीं है, वे भी यह कहकर ऐसी चीजों से ईर्षा नहीं करते कि गांव में सबके काम आवेगी और आती ही है। इसलिए फल सबके यहां बांटे जाते हैं ताकि किसी को ईर्षा का भाव अनुभव न हो। यद्यपि पहले बागों पर कोई लगान न था, इत्यादि।

फिर अगर हम इन बाहरी कपड़ों का उपयोग करने लगें तो हमारे यहां के जुलाहे और कोरी क्या खायेंगे?

मैने कहा फिर ये चीजें गांव में बिकने ही क्यों देते हो? ताऊ जी ने कहा- पहले तो गांव के कानून पंचायतें ही बनाती थीं। अब तो सरकार बनाती है। अब हम कैसे रोक सकते हैं?

बाद में बुद्धि विकसित होने पर मेरी समझ में आया कि यह नीति कितनी अच्छी थी। यह इसी व्यवस्था का फल था कि लोग गरीब होने पर भी खुशहाल और मस्त रहते थे। यद्यपि शासन अंग्रेजों का था परन्तु हमारे प्रदेश में उनका व्यापार यातायात की कठिनाईयों आदि के कारण नहीं पहुंच पाया था। पंचायतों के दबदबे के कारण गांव के व्यापारी तक उनके एजेन्ट नहीं बने थे। साथ ही थोड़ी बहुत खेती के साथ हर एक को कताई, बुनाई, सिलाई आदि धन्धों के रुप में एक सहायक धन्धा मिल जाता था। इस प्रकार गांव का पैसा गांव में ही घूमता था। किसी हद तक यह बातें मेरी समझ में आईं परन्तु पूरा संतोष नहीं हुआ। अन्त में यह तय हो गया कि उन कपड़ों का उपयोग मैं सिर्फ स्कूल और दूसरे गांवों में जाते समय ही करुँगा।

इस सम्बन्ध में एक और घटना याद है। एक बार कुछ लड़कियों के जिद करने पर कुछ स्त्रियां कुछ छीटें और रेशमी कपड़े खरीद लाईं। इस पर ताऊ जी ने उनकी खूब भर्त्सना की और दूसरे दिन जुलाहों, कोरियों व रंगरेजों को बुलाकर कहा- ''भाई तुम छीटें छापने का इंतजाम करो वरना बच्चों की जिद को रोकना मुश्किल है।'' फलतः थोड़े ही दिनों में गांव में ही छीटे छापने का काम शुरु हो गया। सत्यनिष्ठा और ईमानदारी लोगों में आदर्श थी। हजारों का लेन-देन जबानी होता था। सेठ साहूकार का कच्चा

हिसाब भी खड़िया से लकड़ी की तख्तियों पर लिखते थे और शाम को पक्की बही पर उतार लेते थे। न लेने वाले से दस्तखत कराये जाते थे और न ही गवाहियां कराई जाती थीं। खुद हमारे ही घर की एक घटना मुझे याद है। गांव के एक मुसलमान ने मेरे बड़े भाई से एक बार कहा कि तुम्हारी माँ एक बार तीस रुपये ले गई थीं। भाई ने कहा तो आपके दूध के धुले देने हैं। पीछे मैने भाई से पूछा कि "यह रुपये कब लिए थे?" मैने शंका की। "ऐसा नहीं हो सकता। भाई ने उत्तर दिया।" "थोड़े से रुपयों के लिए कोई ईमान बिगाड़ेगा?" ऐसी ही अनेक घटनाएं देखीं। अर्थात् लोग यह कल्पना ही नहीं करते थे कि इस तरह झूठ बोलकर कोई हमें ठगेगा। ऐसा होता भी न था। कई लेने वालों की भी ऐसी घटनाएं देखी। इसके दो प्रधान कारण थे। समाज में बूढ़े पुरुष-स्त्रियां प्रायः ऐसी कथाएं बच्चों को सुनाया करते थे, जिसमें बेईमानी की निंदा और उसके कुफल मिलने का वर्णन होता था। साथ ही ऐसा करने वाला व्यक्ति सारे समाज में हेय दृष्टि से देखा जाने लगता था।

मुझे याद है कि एक बार गांव के जमींदार के लड़के ने एक गरीब से कोई नाजायज रकम वसूल कर ली थी, परन्तु लोकापवाद के सामने उसे वह रकम वापिस करनी पड़ी। एक और बात थी, लोग अदालतबाजी या पुलिस आदि में जाने के सख्त खिलाफ थे। लोगों की मनःस्थिति एक घटना द्वारा मेरे सामने आयी। बात साधारण सी थी। हमारे कुटुम्ब का एक दस-बारह वर्ष का लड़का पड़ौसी गांव इख्तयारपुर की सरहद पर भैंस चरा रहा था, कुछ उसकी लापरवाही से भैंस उस गांव के एक गृहस्थ के खेत में घुस गई। इस पर उसने उसके दो-तीन लाठियां मारीं। लड़के को चोट घातक तो नहीं पर काफी लगी थी।

शाम को उसके अधिक पीड़ित होने के कारण चौपाल पर इसकी चर्चा हुई और छानबीन हुई। लोगों को इस मामले में इस बात पर विशेष रोष हुआ कि छोटे बच्चे पर एक प्रौढ़ व्यक्ति ने ऐसा प्रहार किया। फिर उसी समय उक्त गांव के पंचों को इस विषय में उचित कार्यवाही कर तीन दिन में परिणाम की सूचना देने को लिखा गया।

संयोग से यह मियाद पूरी हुई, उस दिन वृद्ध लोग किसी दूसरे गांव में गये हुए थे। शाम को काफी लोग नियमानुसार एकत्र हुए, जिनमें अधिक तरुण मंडली थी। पत्र का उत्तर न आने की चर्चा छिड़ी और लोगों ने स्वयं दण्ड देने का निश्चय किया। फिर व्यवहारिक योजना पर विचार हुआ। मालूम हुआ कि उस दिन वहां कोई गायन मंडली आई थी। यह निश्चित था कि सारे गांव के लोग चौपाल पर एकत्र मिलेंगे। अतः यह तय किया गया कि यद्यपि दण्ड अपराधी को ही देना है पर सावधानी सब प्रकार की कर लेनी चाहिए। गायन आदि में प्रायः लोग हथियार आदि पास नहीं रखते। फिर भी काफी लोगों को एकत्र कर छोटी सी ग्राम-सेना रवाना हुई।

गांव के बाहर ठहर कर एक-दो गुप्तचर भेजे गये। उन्होंने लौट कर खबर दी कि सब लोग गाना सुनने में तल्लीन और निशस्त्र हैं। अतः तत्काल लोगों को काम बांट दिया गया। अधिकतर आदमी एकत्रित लोगों को चारों ओर से घेरे रहने और रोकने की स्थिति में नियुक्त किये गये, कुछ रास्तों की रक्षा पर नियुक्त किये गये और कुछ छंटे हुए

जवानों के साथ पीटे गये लड़के का पिता भीतर जाकर कार्य करे, निश्चय हुआ। फिर यह भीड़ सीधी चौपाल पर पहुंची। चार-छः आदमी खास-खास वापस भागने के रास्तों पर छोड़ दिये गये। वहां के लोग यही समझे कि यह लोग भी भजन सुनने आये हैं, किन्तु यह लोग पहले के निश्चय के अनुसार अपने-अपने मोर्चों पर खड़े होते गये।

जो लोग बीच में पहुंचने वाले थे उन्होंने वहां पहुंच कर गाने वालों को रोक कर उस व्यक्ति के लिए पूछा जिसने लड़के को मारा था। वह एक पलंग पर लेटा था। लड़के के बाप ने उपस्थित लोगों से कहा कि इसने एक अबोध लड़के पर लाठी चलाई थी। इसका न्याय करने को आपको लिखा गया था। आपने वह नहीं किया इसलिए हम स्वयं दण्ड देने आये हैं। हां, यदि आपने इसका पक्ष लिया तो हम इसके लिए भी तैयार हैं। कहकर उसने अपराधी से कहा कि उठकर लाठी सम्हाल ले। वह खड़ा हो गया पर लाठी पास न थी। लड़के के बाप ने अपने एक साथी की लाठी लेकर उसे दे दी और प्रहार किया। पहला तो उसने उसे रोक लिया परन्तु दूसरा उसे पड़ गया। लोग सम्हलने भी न पाये थे कि दो लाठियां और जमाकर यह लोग तेजी से गांव से निकल गये। यह भय था कि गांव वाले अब सम्हल कर पीछा करेंगे। अतः काफी तेजी से अपने गांव लौट आये। दूसरे दिन मालूम हुआ कि गांव वालों ने इसे अपमान समझा है। कुछ ऐसे लोगों ने जो ऐसे अवसरों की ताक में रहते हैं, उनको खूब समझाया कि तुम पुलिस में रिपोर्ट करा दो। पुलिस भी आ गई, किन्तु किसी ने उसे सहयोग नहीं दिया। उत्तर बड़ा विचित्र था। उन्होंने कहा न हम कायर हैं, न कमजोर, जो सरकार का सहारा लें। हम खुद अपना बदला ले लेंगे। अन्त में किसी का सहयोग और साक्ष्य न मिलने से पुलिस वापिस चली गई।

अन्त में दोनों गांवों की सम्मिलित पंचायत होना तय हुआ और वह हुई। पहले तो गरमागरम बहस हुई। फिर दोनों गांवों के वृद्धों पर फैसला छोड़ दिया गया। वृद्धों की बैठक एक अलग जगह हुई। ताऊ की कृपा से मैं भी साथ था। वहां की बातचीत बिल्कुल गम्भीरतापूर्ण हुई। पहले उन्होंने एकमत से यह मान लिया कि बालक पर प्रौढ़ की लाठी चलाना अपराध था। फिर सबने यह निर्णय किया कि दूसरे पक्ष की उत्तेजना स्वाभाविक होते हुए भी अविचारपूर्ण और जल्दबाजी की थी। गांवों की पारस्परिक एकता के लिए भी घातक थी। इसके बाद भी बदला लेते समय जैसा संयम दिखलाया गया और घातक चोट नहीं मारी गयी, इस बात के लिए लड़के के बाप की प्रशंसा की गई और अन्त में इख्तयारपुर वालों के संयम और पुलिस से सहयोग न करने के काम को आदर्श माना गया। फैसले को सुनाने का ढंग भी बड़ा ही सुन्दर तय किया गया था। निश्चित हुआ कि जहां तक दोष स्वीकार करने की बात है, उन्हें दोनों व्यक्तियों के गांव के पंच कहें और प्रशंसा के भाग को प्रतिपक्षी एक दूसरे के गांव के लिए कहें।

ऐसा ही किया गया। इससे वायुमण्डल एक साथ बदल गया। विरोधियों के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनकर दोनों पक्ष मानों विरोध को भूल गये और खुशी-खुशी सबने परस्पर माफी मांग ली। इस प्रकार न्याय और एकता दोनों की रक्षा कर ली गई। बताया जा चुका है कि शाम को प्रायः नियमित रुप से सब जातियों के पंच चौपाल पर एकत्र

होते थे। गांव भर की सब छोटी-छोटी बातों की रिपोर्ट भी हो जाती थी और उस पर स्थानीय पंच को जो कुछ करना आवश्यक होता था, या दूसरों की जो मदद लेनी होती थी, वह भी तय हो जाती थी। जहां तक हो सकता था, ज्यादातर मामले जबानी निबटा दिये जाते। केवल वे ही मामले लिखित रुप के रक्खे जाते जो तत्काल नहीं निबटाये जा सकते थे और जिसमें जांच-पूंछ लम्बी चलती, सो ऐसे मामले बहुत कम होते थे।

इसका कारण कुछ तो सरकार का भय था, दूसरे लिखे-पढ़ों की कमी, तीसरा था न्याय की शुद्धता एवं उसका व्यावहारिक रुप। उदाहरण के लिए एक दिन स्वयं हमारे ताऊ के पुत्र की शिकायत पेश हुई। उसने एक गरीब के लड़के को पीट दिया था। छानबीन से मालूम हुआ कि किसी बात का उत्तर उसने बराबरी के व्यक्ति की तरह ही दिया था। इधर ताऊ के लड़के सुजानसिंह को प्रधान का लड़का होने का जोम (घमण्ड) था। अतः वह एक गरीब के लड़के का समानता दिखाना सह न सका। इस पर न केवल प्रधान ने अपने लड़के की भर्त्सना की प्रत्युत वहीं उसे पीटना शुरु कर दिया। यहां तक कि फरियादी को ही उसे बचाने को बीच में आना पड़ा। प्रधान ने कहा कि जब गांव के लिए मरने-जीने में सब समान भाग लेते हैं तो छोटा-बड़ा कौन है? कहना व्यर्थ है कि सभी छोटे बड़े मामले और सामाजिक जीवन पर काफी स्वस्थ्य प्रभाव डालते थे।

जटिल और गम्भीर मामलों की जो बाकायदा निर्णय और जांच होती थी, उसके लिए प्रत्येक जाति या धन्धे का एक ही पंच होता था, भले ही गांव में किसी एक जाति की अधिकता हो। साथ ही यथासाध्य यह कोशिश होती थी कि फैसला सर्वसम्मत हो और इस ढंग से हो कि वादी-प्रतिवादी दोनों को संतोष भी हो और असंतोष भी हो तो हल्का हो। बहुमत से हर बात तय करना बुरा समझा जाता था और उसका प्रयोग खास मौकों पर ही होता था। माहौल भी ऐसा था कि उसकी क्वचित ही जरुरत पड़ती थी। कभी लम्बी बहस होने पर कुछ लोग बहुमत से फैसला करने पर जोर देते तो वृद्ध लोग यही कहते कि फैसला कर देने पर कम मत वाले पक्ष के मन में मलाल बना ही रहेगा। इससे कई मामलों में देर जरुर लगती परन्तु आखिर में कुछ समझौते की शक्ल निकल आती। कठिनाई इसलिए और भी कम पैदा होती थी कि सब लोग गांव के मामले में सरकारी हस्तक्षेप को जगह न देने को उत्सुक रहते और न्याय-भावना बहुत प्रबल थी। खासकर पंच बनाये गये लोग निष्पक्ष रहना अपना धर्म समझते थे। पंच होकर पंचायत करना या गांव भर के हिताहित के प्रश्न पर अनुचित जिद करना पाप ही समझा जाता।

मेरी याद में एक ही ऐसा मामला याद आता है, जिसमें बहुमत के प्रयोग पर बराबर जोर दिया गया था। वह था हमारे पड़ौसी गांव गनौरा के बलोच जमींदार की और हमारी सरहद का। गनौरा में मुख्य जनता जाट थी। सम्भवतः शुरु में गांव के लोग अपने जमींदार के पक्ष में थे। वैसे ही जाट अंग्रेजी सरकार के पक्ष में रहे थे, इसलिए लोग उन्हें अच्छा नहीं समझते थे। फिर भी अंत में दोनों गांव के पंच मुकर्रर हुए। उनमें

कुछ न्यायनिष्ठ भी थे और बहुमत हमारे गांव के पंचों से सहमत था। अतः कई लोगों ने आग्रह किया कि फैसला बहुमत से कर दिया जाय, किन्तु कुछ अधिक बुद्धिमान वृद्ध टालते रहे। यहां तक सिर्फ दो-तीन आदमी ही (जमींदार सहित) एक पक्ष में रह गये, तब उनसे धर्म की शपथ उठाने को कहा गया। इस पर हिचक गये और फिर फैसला हो गया। एक बार मेरे पूछने पर ताऊ जी ने कहा, हमारे सामने केवल न्याय का ही प्रश्न नहीं है, गांवों में फूट और भेदभाव भी नहीं बढ़ने देना है। सरकार तो इस ताक में ही रहती है कि हम में से कोई फरियादी होकर उनके पास जाए।

त्योहार में होली, दीवाली, दशहरा, रक्षाबन्धन और तीज विशेष धूमधाम से मनाये जाते थे और गढ़-मुक्तेश्वर का गंगा मेला तथा बूढ़े बाबू का मेला- यह दो मेले अधिक लोगों को आकर्षित करते थे।

सबसे अधिक दिनों तक मनाये जाने वाले त्योहार होली और तीज थे। होली बसंत पंचमी से शुरु होकर चैत वदी पांच तक मनाई जाती थी। इस तरह प्रायः डेढ़ महीना धूमधाम रहती। लोगों में विश्वास था कि यह महीना हँसी खुशी, मस्ती, राग-रंग का ही है। लोगों की इस भावना को प्रगट करने वाली एक होली की प्रारम्भिक पंक्तियां मुझे आज तक याद हैं।

''होली खेल सदा नहीं रहना''
मस्त महीना है फागुन का सब पर चढ़े चौगुना रंग।
छहों राग छत्तीस रागनी आठों पहर खुशी से दंग।।
''इसमें गाफिल वह पावेगा
जाका (जिसका) लोट जायगा लहना (भाग्य)''।

रोज रात को 8 बजे से 12 बजे तक साधारणतः पुरुष इकट्ठे होकर भारी-भारी बाद्य के साथ होलियां गाते थे। ढोल प्रायः 20 से 30 सेर तक के बड़े-बड़े होते थे। यह बाजे गाने के साथ ताल स्वर मिलाकर नहीं बजाए जाते थे। गाने वाली मंडली एक अन्तरा गा लेती थी, तब बीच में थोड़ी देर बाजे वाले लोग बाजे बजाते, फिर दूसरा अन्तरा गाने तक रुक जाते।

बाजा, लोग दो ही प्रकार का बजाना जानते थे। युद्ध का मारु बाजा और दूसरा नाच का। होली में मारु बाजा ही बजाया जाता था। नाच का बाजा स्त्रियों के समारोह में ही बजाया जाता था और उसमें पुरुष नहीं जाते थे। होलियाँ प्रायः पौराणिक कथाओं और युद्धों से सम्बन्धित ही होती थीं। ऐसे समय में गांवों के पढ़े और गाना जानने वालों की बड़ी कदर होती थी और मैं भी उनमें से एक था। मैं पुस्तक से या जबानी बोलता और बाकी उसे मंडली दोहराती।

बड़े-बड़े वाद्यों से लेकर लोग अनेक प्रकार के कलापूर्ण ढ़ंग से उछलते, कूदते, थिरकते, जिससे उनकी काफी कसरत हो जाती थी। बीच-बीच में दूसरे उनकी जगह बजाने लगते थे। इस उत्सव में स्त्रियां भी दो तरह से भाग लेती थीं। कुछ युवतियां और बहुएँ घूँघट निकालते हुए प्रायः देवरों के चादरों के छोर पकड़कर खींचतीं। वे हाथ में प्रायः एक पतली छड़ी रखती। चादर खींचते ही पुरुष समझ जाता और वह उसके आगे

हो जाता। स्त्री उसे छड़ी से इस प्रकार हाँकना शुरु करती, जिस तरह किसान बैल को हाँकता है। इस खेल में भी लोगों ने विनोद के कई तरीके निकाल रक्खे थे। कोई कुछ देर सीधा चलता, फिर टेढ़ा-मेढ़ा चलने लगता। कोई अड़ियल बैल की तरह बैठ या लेट जाता और प्रायः पीटने पर चलता। दूसरे दिन होली बजाते हुए लोग गांव के मुहल्लों के चक्कर लगाते। सबसे पहले उन लोगों के दरवाजे पहुँचते, जिनके यहां उस वर्ष कोई मौत हो चुकी होती। यह उनका शोक दूर कर हर्षोल्लास में शामिल करने के लिए किया जाता था। कुछ देर वहां गा-बजा और उन लोगों को सान्त्वना दे साथ लेकर उस मोहल्ले की चौपाल पर जाते, यहां पर मोहल्ले की होली और बाजे वाले भी शामिल हो जाते। इसी प्रकार गांव के सारे मुहल्लों में घूमते हुए होली होती, फिर इसी प्रकार पास-पड़ौस के गांवों में होली जाती। आधे बाजे गांव में होली जारी रखने के लिए रहते और आधे बाहर जाने वाले ले जाते।

इस प्रकार इस त्यौहार द्वारा काफी दिनों तक परस्पर प्रेम-वृद्धि, सम्पर्क, सद्‌भावना के साथ-साथ सांस्कृतिक प्रचार का काम भी होता। आश्चर्य की बात थी कि उस जमाने में वहां भद्‌दे गीतों, असमय मजाकों और धूल मिट्‌टी फैंकने के रिवाज कतई न थे। शहरों में अलबत्ता था। दीवाली - दशहरा आमतौर पर जैसे सब जगह मनाये जाते हैं, उसी प्रकार मनाये जाते थे। केव्रल सार्वजनिक स्थानों व रास्तों आदि की मरम्मत का विशेष आयोजन होता था।

श्रावणी और तीज के त्यौहार विशेष आकर्षक होते थे। तीज से पूर्व बहिन बेटियों को लाना बहुत आवश्यक माना जाता था। इस प्रकार के अनेक गीत प्रचलित थे कि बहिन या बेटी ससुराल में अपने भाई के आगमन की नित्य प्रतीक्षा करती है, शकुन लेती है। जिसके भाई नहीं है, वह बड़ी निराश और उदास है। कुछ गीतों में इतनी दूर सगाई करने वाले नाई, ब्राह्मणों के अभिशाप भी होते थे। जिनके सगे भाई न होते, वे किसी न किसी को राखी बाँधकर भाई बनाती थी। राखी का महत्व लोग इतना मानते थे कि सगी बहिन के बारे में भले ही कुछ उपेक्षा हो जाय, धर्म बहिन के बारे में उपेक्षा नहीं की जाती थी। अनेक बार दूसरे धर्म जाति के धर्म भाई "भात भरने" आदि तक के काफी खर्च करते थे। कई बार ऐसी भ्रातृहीन बहिनों के धर्म-भाई बनने के लिए वृद्ध किसी उपयुक्त युवक को प्रेरित करते थे। इस काम में जाति, धर्म-भेद का कोई स्थान नहीं था। वे कहा करते थे कि किसी बहिन-बेटी को भाई का अभाव अपने गांव में नहीं होना चाहिए। उसके इस अभाव के अनुभव से होने वाले दुःख को दूर करना एक बड़ा पुण्य का कार्य समझा जाता था। स्त्रियां इस बारे में विशेष उत्सुक दिखाई दिया करती थीं। मानों वे उन भ्रातृहीनों के दुःख का स्वयं अनुभव करती हों, इत्यादि। इनका भोले ग्रामीणों पर काफी प्रभाव पड़ता था और गरीब से गरीब भी उन्हें लाने को उत्सुक रहता। इन दो महीनों में रथों की काफी मांग रहती थी क्योंकि प्रत्येक घर से लोग बहिन-बेटियों को लाने जाते थे। उनके आने से गांव में चहल-पहल रहती। वे सबसे मिलने-जुलने जातीं। फिर पर्दे और सास-ससुर के यहां के संकुचित जीवन के मुकाबले में पीहर में

उन्हें खुला माहौल मिलता। झूलने, गाने-बजाने आदि में खूब मस्त रहतीं।

पंच लोग भी इन दिनों खूब व्यस्त रहते। लोग उद्दंड और उग्र प्रकृति के तो होते ही थे। साल में कई बार आपस में लाठियां चल जाना मामूली बात थी। साल भर के उन सारे झगड़ों को भुलाकर फिर उसमें भ्रातृभाव पैदा करने का काम भी इसी त्यौहार पर होता था और उसकी व्यवस्था उन्हीं को करनी पड़ती थी।

बाद में मुझे मालूम हुआ कि ग्वालियर राज्य के तँवर-घाट और गूजर-घाट परगनों में यह त्यौहार हमारे यहां की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित और प्रभावशाली ढ़ंग से मनाया जाता है। वहां भी इन दोनों में उग्र स्वभावी होने के कारण काफी व्यक्तिगत झगड़े होते थे। खून तक हो जाते थे। वहां उनका असर मिटाने के लिए दोनों घाटों के सरदारों का सम्मिलित दरबार (पंचायत) होती है। इसमें सबकी पारस्परिक शिकायत सुन और जहां आवश्यक हो दण्ड देकर उनमें फिर मेल करा दिया जाता है। वे पिछला बैर भूल राखी बाँधकर फिर भाई बन जाते हैं। शासन में अपने मामले कभी नहीं ले जाते। फैसले होने के बाद भोज होते थे।

भाद्रपद के आखिर में जामाता लोग आते और उनकी दावतें चलतीं। सलूनी अर्थात् पूर्णिमा बाद वे लोग विदा होते। इस प्रकार प्रायः दोनों महीनें खूब चहल-पहल के होते। लड़के और युवक मेहमानों के आतिथ्य और उनसे उनके प्रदेशों के हालचाल सुनने में विशेष रुचि रखते थे। इस प्रकार वे आतिथ्य की पद्धति भी सीखते थे। मेहमान भी उन्हीं से प्रसन्न रहते थे क्योंकि वे उनके समव्यस्क होते थे और उनके साथ वे हमजोलियों के समान निसंकोच व्यवहार कर सकते थे। जबकि वृद्धों के सामने उन्हें बहुत संयत और संकोचशील रहना पड़ता था और हुक्का भी न पी सकते थे। यद्यपि वृद्ध लोग स्वयं ही ऐसे मौकों पर चौपाल से बहुधा अनुपस्थित रहते थे और कभी-कभी स्वयं ही उनके लिए पृथक कक्ष या कमरे में बैठने की सुविधा करवा देते थे। फिर भी वृद्धों तक शोर न पहुंचने देने के लिए उनकी हास्य और ठठोलियों को खुला क्षेत्र न मिलता था। अतः वे भी प्रायः बागों में या अन्य दर्शनीय स्थान आदि देखने चले जाते थे। मेहमानों को भोजन भी कुटुम्बी और घनिष्ठ मित्र क्रम से कराते थे और उसके लिए घर के बच्चे ही विशेष आग्रहशील होते थे क्योंकि उन्हें एक ओर तो नये सखाओं की मेहमानी करने का शौक होता और दूसरी ओर स्वयं को भी विशेष भोज्य पदार्थ पाने का लालच होता। घरवाले जब तक औरों की तरह मेहमानों को न्योता न दे पाते, तब तक उस घर के लड़के कुछ लज्जित से ही बने रहते थे,परन्तु दूध आदि पदार्थ आपस में देने-लेने की प्रथा होने से यह उतना कठिन भी न पड़ता था। पूर्णिमा के बाद धीरे-धीरे मेहमानों की विदाई होती।

मेलों में गढ़मुक्तेश्वर का मेला सार्वजनिक महत्व का था और अन्तर्प्रान्तीय संगठन बनाए रखने में उसका क्या महत्व और उपयोग था, यह बतलाया जा चुका है। बूढ़े बाबू के मेले की बुनियाद अंधविश्वास पर थी। अनेक रोगों में लोग उनकी मनौती मानते थे। बच्चों के जडूले (प्रथम केश) उनके यहां ही उतरवाने की मान्यता आमतौर

पर होती थी। यह विश्वास स्त्रियों में विशेश रुप से था। वहां की यात्रा को बूढ़े बाबू की जात कहते थे। पीछे बहुत छान-बीन करने पर मुझे पता चला कि यह बूढ़े बाबू कोई बंगाली बाबू नहीं बूढ़े बाबू कण्व ऋषि हैं। उत्तर प्रदेश के कई जिलों में यह 'काना बाबा' के नाम से भी पूजे जाते हैं।

लोगों की इस मनः स्थिति के कारणों को मैं धीरे-धीरे बाद में समझ पाया। कुछ उस समय के सुने हुए गीतों से स्पष्ट था कि पहले अनमेल या छोटी उम्र में विवाह नहीं होते थे क्योंकि उस समय इन बातों के विरोध में काफी गीत गाये जाते थे। इसके अतिरिक्त यद्यपि परिस्थितियोंवश लोगों को यह रिवाज अपनाने पड़े थे परन्तु पुत्री के दुःख-सुख की वे अपनी जिम्मेदारी अधिक अनुभव करते थे। पुरुषों की अपेक्षा माताओं में पुत्रियों के लिए यह भावना अधिक प्रबल होती थी। वे अपने पुत्रों को प्रायः कहा करती थीं कि देखो मेरे मरने के बाद तुम्हारी बहिन यह न समझे कि मेरा कोई नहीं रहा।

यह मैं बता चुका हूँ कि पुत्र-पुत्रियों को बलिष्ठ बनाना एक प्रकार से साधारण भावना थी। इसलिए सम्भवतः जहां एक ओर संतान का माता-पिता पर वैसा ही प्रगाढ़ स्नेह होता था, वही वह संतान बलिष्ठ भी होती थी। सारा वायुमण्डल, प्रचारकों की शिक्षाएँ, सबका आचरण और वृद्ध वृद्धाओं की कहानियाँ आदि मिलकर उस पर मर्यादाओं की भी उतनी ही गहरी छाप डाल देती थी। फलतः पिता, माता, ससुर, ज्येष्ठ भ्राता आदि निर्बल भी हो तो उनके सामने अनम्रता से बोलना तक बुरा समझा जाता था। उनके सामने चुप रहना और उनकी अनुचित कठोरता तक चुपचाप सहन कर लेना ही शालीनता मानी जाती थी। वृद्ध भी क्षणिक उत्तेजनावश हो जाने वाली बातों का परिमार्जन बहुत जल्दी ही कर डालते थे और इसलिए उससे फलित विकार उनके वास्तविक प्रेम और वात्सल्य की टक्कर से अदृश्य हो जाते थे।

किन्तु दूसरी ओर समाज के ढ़ाँचे में कहीं प्रगट और कहीं अलक्षित रुप से बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहा था। मुसलमान शासकों ने समाज के आंतरिक ढाँचे और संगठन को न छुआ था। वे ऐसे उदण्ड और संगठित ग्रामों से अपना टैक्स लेकर ही संतुष्ट हो जाते थे, परन्तु अंग्रेज शासकों ने व्यवस्थित और वैज्ञानिक तरीके से उसकी जड़ें तक खोदना शुरु कर दिया था। जहां-तहां गांवों में पुराने अनुभवी और दूरदर्शी वृद्ध थे, वे अप्रत्यक्ष रुप से इन प्रयत्नों से टक्कर ले रहे थे। यह एक प्रकार का शीतयुद्ध था जो जनता के ऐसे समूहों और सरकार के बीच चल रहा था। एक पक्ष वैज्ञानिक, शिक्षित, साम्राज्यवाद का विशेषज्ञ और सत्तारुढ़ था और दूसरा पक्ष था अशिक्षित, सत्ताहीन और केवल पुराने तरीकों का जानकार। जिसके पुराने शस्त्रास्त्र भी छीन लिए गए। उसके पास एक ही शक्ति थी, वह थी जनता का मानस। वह उसके साथ था, परन्तु उसका उपयोग लेने वाले होने पर ही उसका उपयोग हो सकता था।

यह पीढ़ी भी अब समाप्त हो रही थी। उन्हीं समूहों में जिसने स्वाभाविक दयावश भी किसी अंग्रेज स्त्री, पुरुष, बच्चों की रक्षा की थी, उन्हें ही अपने भाईयों और साथियों के ऊपर जमींदार या पदवीधर बना दिया गया था। इस प्रकार समाज की

समानता के आधार पर प्रहार हो चुका था। इसके सिवाय जो क्षेत्र के कट्टर विरोधी थे, उन्हीं में से सबसे पहले सेना और पुलिस के लिए जवान भर्ती किये जाने शुरु किये गये। दूसरी नौकरियों में भी उन्हें लिया जाने लगा। इन लोगों को जानबूझ कर बिगाड़ा जाता था। यह लोग अपने को ऊँचा और अपने समाज के लोगों को गँवार और नीचा समझने लगते। दुराचारी, दुर्व्यसनी और उद्धत एवं फैशनबाज बन जाते। समाज की संस्कृति का भी पालन वह कम ही करते। इसके साथ जिन लड़कों की शादी होती, उनमें से कोई अपनी विवाहिताओं से बहुत क्रूर व्यवहार करते। ऐसी कई घटनाएं हो चुकी थीं। समूहों में स्त्रियों के लिए बड़े सम्मान की भावना थी। फिर उनकी रक्षा सबसे बड़ा कर्तव्य समझा जाता था, अतः ऐसी घटनाओं से काफी व्यापक उत्तेजना पीहर के गांव में फैल जाती। कुछ ऐसी घटनाऐं हो चुकी थीं, जहां कई बार समझाने पर भी न मानने पर लड़की के भाई ने अपने बहनोई का खून कर दिया। मेरी माँ ने मेरी बहिन के सम्बंध का इसी आधार पर काफी विरोध किया था और उसी समय ऐसी बातें चर्चा में आई थीं। यही कारण है कि भाई का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया था। उधर माता-पिता की संतति की इतनी श्रद्धा होती थी, और वह परिवेश द्वारा पैदा की जाती थी कि उनकी इच्छा को पूरा करना पुत्र-पुत्री के लिए सबसे बड़ा कर्तव्य समझा जाता था। यदि किसी से पिता की शत्रुता होती और वह पुत्र से बदला लेने को कहता तो पुत्र फाँसी का जोखिम उठाकर भी पिता की उस इच्छा को पूरी करता। ऐसे वायुमण्डल में पत्नी, लड़कियाँ भी स्वभावतः कुछ असहिष्णु होती थीं। अतः भाई होने से वे अपने को असहाय अनुभव नहीं करती थीं। ससुराल वालों और पति पर भी इस बात का प्रभाव रहता था।

यद्यपि मुस्लिम प्रभाव से घूँघट और पर्दे की प्रथा जारी थी, परन्तु स्त्रियाँ हेय दृष्टि से नहीं देखी जाती थीं। आपस में बोलचाल व्यवहार लड़कों के समान ही उनका भी मर्यादित होता था और मर्यादा के भीतर उनको सब प्रकार के समारोहों में भाग लेने दिया जाता था। खेतों पर घूमना, वहां के सागपात और जानवरों के लिए चारा आदि ले आना, घर और चौपाल का पानी भरना, अपने मकान के सामने की गली की, और यदि किसी दिन कोई वृद्ध वहां न हो तो, चौपाल की सफाई करना आदि सब काम, और दूसरे घरेलू काम वे ही करती थीं। वृद्धाओं को आमतौर पर दाई का काम, गृहव्यवस्था, खास-खास छोटे-बड़े रोगों की दवाएं, त्यौहारों आदि की कथाओं, सामाजिक व्यवहार और मरहम पट्टी (प्रथम उपचार) की जानकारी होती थी और वे नई बहू-बेटियों को यह बातें सिखाने को तत्पर रहती थीं।

जिस प्रकार पुरुषों में वृद्धों का मान था, उसी प्रकार कुटुम्बों में वृद्धाओं का मान था। घर में जो चीज आती, वह वृद्धाओं को सौंपी जाती, जो उनकी स्वीकृति से सभी को दी जाती। कोई खाने-पीने की नई चीज आती तो सबको बांटने का काम उनका होता था। कुटुम्ब में किस को किस चीज, कपड़े, जूते, जेवर आदि की आवश्यकता है, उनका ध्यान रख मँगा देना भी उन्हीं की जिम्मेदारी होती थी। वे भी सबके साथ समान व्यवहार रखना अपना धर्म मानती थीं।

सगाई-संबंधी आदि के प्रश्नों पर भी उनकी सम्मति आवश्यक मानी जाती और विशेष अवसरों पर वे महिलाओं का नेतृत्व करतीं। मामूली मेले, हाट, कथा आदि में जाने वाली स्त्रियाँ भी एकत्र होकर किसी वृद्धा को अवश्य साथ ले जातीं। हाथ में लाठी रखतीं और अन्य स्त्रियां छोटे डंडे। वृद्धाओं का दान, पुण्य और हरिस्मरण पर भी विशष ध्यान रहता था। वे सावधानी से सब छोटे-बड़े कुटुम्बजनों की इच्छाओं का अध्ययन करतीं और शिक्षाएँ भी देती थीं। शाम को उनकी कथाएँ या पुरानी बातें सुनने को प्रायः स्त्रियों की सभा-सी जुड़ जाती थी। रास्ते में चार स्त्रियाँ भी हों तो गाते हुए जाना साधारण बात थी।

कभी कोई आवश्यकता पड़ जाती तो स्त्रियाँ पंचायत में भी वृद्धाओं द्वारा ही अपना पक्ष रखवातीं थीं। स्त्री-धन बहुत पवित्र माना जाता था और कठिनाई आने पर भी उनका उपयोग न करने की चेष्टा की जाती थी। पति और ससुर के अलावा प्रायः सबसे ही स्त्रियाँ आजादी से बातचीत व हास्स-परिहास आदि कर सकती थीं। संतान न होने या संतान होने की स्थिति में स्त्री ही पति की स्थावर और अस्थावर सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती थी और उसे भी गोद लेने का अधिकार होता था। बहु-विवाह प्रचलित थे किन्तु बहुत कम होते थे। लड़कियों के पढ़ाने के पक्ष में तो लोग थे परन्तु स्कूल भेजने के विरोधी थे। इसलिए वे ही लड़कियाँ साक्षर हो पाती थीं, जिनके या तो घर में कोई पढ़ा लिखा होता था या जो घर पढ़ाने वाले का खर्च उठा सकते थे।

वृद्धों की तरह वृद्धाएँ भी कभी बहू-बच्चों से कठोर व्यवहार कर डालती थीं। परन्तु दूसरे ही क्षण वे अपने इसी कार्य पर पश्चाताप करतीं और उनका लाड़ करती दिखलाई देतीं थीं। इससे उनके दुर्व्यवहार का भी किसी पर बुरा प्रभाव न पड़ता था। यही क्यों, बहुओं की तो वृद्धाएँ खास वकील होती थीं। वे उनके दुःख-सुख का उतना ही ख्याल रखती थीं, जितना अपनी पुत्रियों का। समय-समय पर उनके लिए अपने कुटुम्बियों से झगड़तीं। कभी-कभी पुत्र-पुत्री उन पर बहुओं का पक्ष लेने पर व्यंग करती तो वे कहतीं कि "करना ही चाहिए"। यहां क्या उनके माँ, बाप और भाई बैठे हैं? बहुएँ भी इसलिए उन्हें माँ की तरह ही मानतीं। ऐसी वृद्धाओं की काफी प्रशंसा होती थी और विपरीत स्वभाववालियों की आलोचना तो स्वभाविक ही थी।

स्त्रियाँ और उनके सम्मान की रक्षा बिना जाति-धर्म आदि भेदों के करना प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य समझता था। लड़ाई झगड़ों में वृद्धाएँ आमतौर पर अपने पुत्रों को यह कह कर उलाहना देती थीं कि "देख मेरा दूध लजा कर मत आना"। ऐसे प्रोत्साहनों में कई बार अविवेक का पुट रहता था क्योंकि जल्दी में वे घटना का विश्लेषण नहीं कर पाती थीं। युवकों में लड़ने और कमजोरी न दिखाने की भावना को वे काफी बलवान रखती थीं। इसके अलावा कभी अधिक संख्या में लड़ाईयाँ होतीं तो स्त्रियाँ पानी के पात्र तथा मरहम-पट्टी का सामान साथ लेकर रहतीं और अवसर आने पर साहस दिखलातीं तो उनकी बड़ी प्रतिष्ठा होती थी।

कोई बड़ी लड़ाई तो मेरे सामने नहीं हुई। पुरानी कितनी ही ऐसी लड़ाइयों की कहानियाँ लोगों से मैने सुनी थीं। हाँ एक घटना मेरे शैशव की बहुत प्रसिद्ध थी और कई लोगों ने उसका आँखों देखा वर्णन कई बार सुनाया था। उससे ही प्रायः लोग मेरा परिचय 'कमल कुँवर का बेटा' कहकर दिया करते थे। घटना इस प्रकार थी-

गदर के बाद जब भागे हुए लोगों को माफी की घोषणा हुई और उनसे वापस अपनी जगहों पर आबाद होने की अपील की गई तब हमारे गांव के लोग भी फिर आकर आबाद हुए। किन्तु पुलिस वाले फिर भी बीच-बीच में गांवों के चक्कर लगाकर लोगों को तंग किया करते थे। उन दिनों लोग नया जीवन बनाने और कारबार का नया ढाँचा जमाने में व्यस्त रहने के कारण दिन में क्वचित ही गांव में मिलते थे।

एक दिन मेरे पिता बीमार होने के कारण चौपाल पर लेटे थे। अन्य सब पुरुष खेतों पर गए हुए थे। प्रातः दस बजे पुलिस के जवानों का एक दस्ता आया और मेरे पिता का नाम आदि पूछकर कहंने लगे कि तुम्हारा नाम गदर के अपराधियों में है, अतः तुम बुलन्दशहर चलो। यह पुलिस वाले पंजाबी थे। मेरे पिता के असमर्थता प्रगट करने पर वे उन्हें उठा कर घसीटने लगे। एक बच्चे ने यह खबर मेरी माँ को दे दी। उसने बाहर निकल कर उन्हें समझाना चाहा, परन्तु एक सिपाही ने कहा- "इसे भी पकड़ो"।

यह सुनते ही मां वापस मकान में जाकर लाठी उठा लायी। तब तक यह लोग सीढ़ियों से उतर चुके थे। माँ ने जो सिपाही, हाथ पकड़ कर मेरे पिता को आगे-आगे खींच रहा था, उसी की कलाई पर एक लाठी जमाई जिससे पिता का हाथ छूट गया। उस समय शायद उस बच्चे के खबर देने से ही कुटुम्ब की और दस-बारह स्त्रियाँ लाठियाँ ले लेकर निकल आईं और उन सिपाहियों पर टूट पड़ीं। सिपाही चौपाल के पीछे की तरफ भागे तो उधर पुजारिन और दो-तीन उनके पास बैठी स्त्रियों ने जल्दी में जलाने की लकड़ियां लेकर ही रास्ता रोक लिया। गरज उनकी अच्छी पिटाई हुई। कोई काँटों की बाढ़ कूदकर और कोई किसी तरह भाग गए। पिताजी को बुखार तेज था, वह वहीं बैठ गये थे। फिर उन्हें ले जाकर चारपाई पर लिटाया गया।

धीरे-धीरे यह खबर खेतों पर भी पहुंच गई और लोग काम छोड़कर जल्दी ही एकत्र हो गए। घटना की मीमांसा होने लगी। सबका अनुमान था कि माफी की घोषणा अंग्रेजों की चाल थी कि जिससे छिपे हुए लोग भी सामने आ जावें। अब इस घटना को लेकर पकड़ा-धकड़ी शुरु हो जावेगी। एक ने कहा- "प्रधानिन ने अच्छा नहीं किया, अब सब बहू-बेटियों के वारंट जारी हो जावेंगे।"

ताऊ जी ने गरजकर कहा- "बहुओं ने ठीक किया, उनमें भी तो हमारा खून है। दे वारंट लेकर आवें तो सही, हमें एक बार फिर दिखा देना है कि हम मरे नहीं हैं। आखिर ऐसी बातें जारी रहें तो हमारा यहां रहना और बसना ही कैसे होगा?"

बस फिर क्या था। हवा बदल गई। सब इस पर सहमत हुए कि इसी घटना को लेकर ऐसी बातें आयंदा के लिए रोक दी जायँ। फिर कुछ सलाह-मशविरें के बाद दूसरे ही दिन आस-पास के गांवों की पंचायतें बुलाना तय कर चिट्ठियाँ जारी कर दी गईं।

साथ ही गांव के सब रास्तों पर पहरे नियत कर दिये गये और सबसे हरदम तैयार रहने को कह दिया गया।

रात को शांति रही, यद्यपि लोग सजग रहे। दूसरे दिन दोपहर को बाग में बड़ी पंचायत हुई। काफी बहस के बाद इस बात पर सब एकमत थे कि स्त्रियों को हरगिज गिरफ्तार न होने दिया जाए। इसमें जितना भी बलिदान करना पड़े। किया जाए। साथ ही सबने सूचना मिलते ही सहायता को आने का वचन दिया। पहरे और सजगता में दूसरे दिन भी कोई शिथिलता नहीं आई।

आखिर तीसरे दिन एक इंसपैक्टर आया। पहरेदारों ने उसे गांव के बाहर ही रोककर खबर दी और कुछ वृद्ध जाकर उससे मिले। उसने कहा कि वे सिपाही बिना हुक्म के आए थे, जिन्हें सजा दी जायेगी। उन्होंने कहा कि ऐसा है तो ठीक है। परन्तु अब कोई सरकारी आदमी या अफसर बिना पूछे गांव में न घुसे, ऐसी व्यवस्था कर दें। अन्यथा हम उसकी सुरक्षा के लिए जिम्मेदार नहीं हैं। उसके बाद मेरी मौजूदगी तक यही रिवाज था। पिता को उन्हीं दिनो सरसाम हो गया और उसी बीमारी में उनका देहावसान हो गया। स्वभावतः इस घटना से गदर की बातें ताजा हो उठीं। कहा जाता है कि उन्हें इस बात का बड़ा आघात पहुंचा था कि स्त्रियों को उनकी रक्षा करनी पड़ी।

गांव में इस प्रकार के संगठन का प्रभाव सरकार और अधिकारियों पर उस समय भी कितना था, यह इसी से जाना जा सकता है कि यद्यपि ऊपर की घटना की सारी बातें जबानी जमाखर्च के सिवाय कुछ नहीं थीं, फिर भी मेरी याद के समय तक सरकारी अफ़सर बिना प्रधान की स्वीकृति लिए गांव में न घुसते थे। इसकी पुष्टि मेरे सामने भी कई बार हुई।

एक दिन हमारे गांव में नुकता (मृत्यु भोज) था। बहुत से आस-पास के लोग आये थे। युवकों में काना-फूसी चली कि दो वारंटी फरार आदमी भी भोजन करने आये हैं और पुलिस भी आ पहुँची है। वे लाठियाँ ले जाकर टोलियों में इधर-उधर बैठ गये। सब यही कहते थे कि अपने गांव में किसी की गिरफ्तारी होने नहीं देंगे।

इसी बीच, एक सिपाही आया और उसके साथ कुछ वृद्ध पुलिस दल से मिलने गांव के बाहर गये। उन्होंने पुलिस अफसर को यही उत्तर दिया कि गांव में पकड़ने की कोशिश का परिणाम भयंकर होगा। आखिर पुलिस बाहर ही रुकी रही और रात भर गांव के बाहर रास्तों पर ताक लगाये बैठी रही, परन्तु वांछित व्यक्ति न जाने कब और किधर से गायब हो गये। दूसरे दिन पुलिस भी खाली हाथ वापस लौट गयी।

कुछ भावनाएँ लोगों में बड़ी विचित्र थीं, जिनकी मैं उस समय भी नहीं समझ पाया। उदाहरण के लिए एक दिन एक आदमी का बाजे के साथ गांव में जलूस निकाला गया। उसे मालाएँ पहनाई गईं और दावतें दी गईं। पूछने पर मालूम हुआ कि उसने किसी अंग्रेज के यहां डाका डाला था। मैने पूछा कि डाकू की इज्जत क्यों?जवाब मिला कि "चोरी बुरी चीज है, डाका साहस का काम है, जो बहादुर आदमी ही कर सकता है। फिर अंग्रेज के यहां डाका डालने वाला आदमी तो पूजने लायक है।" मेरी समझ में

उसका औचित्य नहीं आया। इसलिए अपने से बड़े कई लोगों से प्रश्न किये परन्तु उत्तर नहीं मिला। बाद में मेरी समझ में आया कि यह गदर के पूर्व और बाद की स्थितियों की प्रतिक्रिया है। क्योंकि उस युग में शत्रु-पक्ष के यहां डकैती डालना भी गोरिल्ला युद्ध का एक अंग बन गया था।

इसी प्रकार यद्यपि चोरी इतनी बुरी चीज मानी जाती थी कि लोग घरों में ताले ही न लगाते थे, परन्तु जानवरों के लिए हरा चारा चुरा लाना पाप नहीं माना जाता था। शायद इसका कारण जंगलों का अभाव और चारे की कमी था।

वैसे लोग बड़े परिश्रमी थे। भौगोलिक स्थिति के कारण वहां परिश्रम भी अधिक करना पड़ता था। जंगल न थे, इसलिए पशुओं का चारा भी उन्हें पैदा करना पड़ता था। दूध पीने-पिलाने के अभ्यस्त होने और खाद के लिए भी पशु रखना उनके लिए अनिवार्य था। दूध बेचना निषिद्ध था, इसलिए घी अधिक उत्पन्न करने के लिए जानवरों को पौष्टिक खुराक देना जरुरी था। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्होंने मार्ग भी निकाल रक्खे थे। जब झड़बेर फूलते तो लोग ठंड में तीन-चार बजे उठकर उनकी कोपलें काट लाते और ग्रीष्म में बबूल की कोपलें और फलियाँ इकट्ठी करते। इनकी बारीक कुट्टी कर करवी की कट्टी में मिला और उसकी खल, दलिया, ग्वार, आदि में सानी करके खिलाते। इससे जानवर बड़े पुष्ट रहते और घी अधिक होता। साथ-साथ खेती के सारे काम तो वे करते ही थे।

इतना सब काम करते हुए भी वे खेलकूद, व्यायाम, कुश्ती, गाने, बजाने, मेले, ठेले तथा आगत जनों के आतिथ्य आदि के लिए काफी समय निकाल लेते थे और मस्त जीवन व्यतीत करते थे। उनके रहन-सहन से यह कल्पना करना कठिन होता था कि वे गरीब हैं। इसका कारण मुख्यतः यह था कि आम तौर पर लोगों में इन बातों का शौक आदि था। साथ ही उनकी व्यवस्था शक्ति को भी कम श्रेय नहीं था। वे दिन में अवसर निकालने के लिए बहुत से काम चाँदनी रातों में ही कर डालते थे। सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा और सहयोग की भावना भी इसमें बड़ी सहायक होती थी। प्रायः युवक अपने-अपने साथियों के कामों में बिना घरवालों से पूछे ही सहयोग दे उन्हें दूसरे दिन अपने साथ रहने के लिए राजी कर लेते थे। साथ ही गांव के और सामाजिक कार्यों में भी सहयोग देना प्रत्येक घर अपनी जिम्मेदारी समझता था। ऐसे कामों में शेष कुटुम्बी उसका कार्य पूरा कराना अपना कर्तव्य समझते थे।

सबसे बड़ी बात थी लोगों में सामूहिक और ग्राम चेतना। अपने गांव की बुराई या आलोचना करने का किसी को अवसर न मिले, इस बात की चेतावनी वृद्ध और वृद्धाएँ बच्चों और व्यस्कों को देते ही रहते थे। कोई मेहमान या अतिथि चौपाल या गांव पर होता तो वृद्धाएँ लड़कों को प्रेरणा देतीं कि "वहां बैठो, बातें करो, उनको पानी आदि जरुरत हो, वह पूरी करो। वह अपने गांव में जाकर यह न कहे कि वहां के लोग आये-गये की खातिर करना नहीं जानते।" इसी प्रकार उन्हें अन्य अवसरों पर स्वयंसेवकों का काम करने को प्रोत्साहित किया जाता था। वयस्क भी कुछ न कुछ समय

ऐसे कार्यों के लिए निकालना अपना कर्तव्य समझते। परिणामतः उनमें बचपन से ही न केवल आतिथ्य आदि के तरीकों की सामूहिक शिक्षा मिलती, प्रत्युत प्रतिष्ठा को सामने रखकर सोचने और काम करने की वृत्ति भी बनती।

गढ़मुक्तेश्वर के मेले में उनका प्रबंध देखने योग्य होता। हर आदमी अपने को स्वयंसेवक समझता था। उनके काम पुलिस करे, यह उनको असह्य था। सामूहिक चेतना इतनी थी कि किसी भी और कितनी ही दूर के ग्रामीण चाहे परिचित हो या अपरिचित व (गिरकारी) एक-दूसरे की सहायता करने और उनका पक्ष लेने को उद्यत रहते थे। स्त्रियाँ परिचित हों या अपरिचित, उनकी सम्मान-रक्षा प्रत्येक अपना कर्तव्य समझता था। कहा जाता था कि जब तक पुलिस ने हस्तक्षेप करना शुरु नहीं किया था, तब तक मेले में एक भी चोरी, गठकटी, स्त्रियों से छेड़छाड़ की घटना न होती थी। प्रत्येक गांव के लोग अपने हकीम या वैद्य को भी साथ ले जाते थे। उनके सामान और कुटुम्ब के लिए एक रथ और एक गाड़ी अलग ही गांव की ओर से दी जाती थी। इससे चिकित्सा और स्वास्थ्य की व्यवस्था भी आज से कहीं ज्यादा अच्छी होती थी। प्रमुख पंच लोग एक सप्ताह पूर्व पहुंच जाते और सब जगह के पंच मिलकर एक प्रकार की प्रबंध समिति बना लेते थे। यही समिति रास्ते, गाड़ियों के पड़ाव, ठहरने के डेरे, बिकने वाले पशुओं के पड़ाव, दुकानें, खेलों आदि के स्थान तथा चौकीदारों का इन्तजाम और निर्णय करती थी। यही निरीक्षक और प्रबंधक तथा टैक्स उगाहने वाले नियत करती थी। मेले के अन्त में इन सबको और कलाकृतियों व पशुओं आदि के पालिकों को पुरस्कार उसी आय में से दिये जाते थे। फिर भी कुछ रकम बच जाती तो उससे कोई घाट या सार्वजनिक सुविधा का स्थान बनवाने के लिए वहां के स्थानीय पंचों को सौंप दिया जाता था। तीर्थ के पैसों को वहीं खर्च देना धर्म माना जाता था।

मेरे समय में यद्यपि साधारण प्रबंध सरकार करने लगी थी, फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों के लोग अपनी व्यवस्था स्वतंत्र रखते थे। बिना शहरी-ग्रामीण का भेद किये सबके लिए चिंता रखने की वृत्ति कम से कम हो चली थी, किन्तु स्त्रियों की रक्षा और पीड़ितों की सहायता उस समय भी बिना किसी भेदभाव के की जाती थी। यह उनके स्वभाविक गुण थे। यहां तक कि बहुत से लोग अपने गांवों के गरीबों को पंचायती या व्यक्तिगत खर्चे से साथ लाते थे। वहीं सब जिलों से आये लोगों की पंचायतें होतीं और परस्पर एक-दूसरे क्षेत्र की स्थिति से अवगत होते। भजन मंडलियाँ भी सब जिलों की एकत्र होतीं। इसी प्रकार भाँडों, नए नाटकों और अन्य प्रकार के खेल करने वालों की मंडलियां भी एकत्र होतीं। सब परस्पर एक दूसरे से नवीन विचारों और नवीन पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त करते। अधिकतर खेल बिना टिकट के ही होते थे। उनका खर्च उनके गांवों के लोग ही उठाते, क्योंकि इन कलाओं को जीवित रखने वाले लोगों की प्रशंसा होती थी और जिनमें विशेषता होती, उनके दूर के गांवों के लोग शिष्य बन जाते थे एवं अपनी उपलब्धियों के बराबर अपने 'गुरु' को स्थान देते थे। इस प्रकार यह मेले समान भावनाओं के प्रचार के साथ-साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान, कला की उन्नति और

प्रादेशिक एकता एवं सम्पर्क बढ़ाने के साधन बन जाते थे। लोग कहा करते थे कि गदर की योजनाएँ भी इसी अवसर पर बना करती थीं।

57 की कहानी, माँ की जुबानी :-

मैं मालागढ़ पढ़ने जाता था। वहां कस्बे के पास ही एक टूटे-फूटे गढ़ (किले) के खंडहर थे। यह नदी के किनारे था, वहां अब भी मुगल कालीन सिक्के किसी को पड़े मिल जाया करते थे। इसी लालच में कभी-कभी अवकाश पाने पर कुछ लड़कों के साथ मैं भी जाता। मैं उसके बारे में बहुत सी बातें जानने को उत्सुक रहता था, परन्तु साथी विद्यार्थी को इसके सिवाय कि गदर में इस किले में बैठकर ही अंग्रेजों का सामना किया गया था, कुछ भी मालूम न था। हां एक लड़के ने जो उमर में कुछ बड़ा था, मुझे समझाया कि इस लड़ाई के बारे में पहले, गणेश चतुर्थी के दिन स्कूल में लड़के एक-एक 'चौपाई' (चौपाईयों में बना हुआ पवाड़ा) गाया करते थे। उसमें कुछ विवरण है। पीछे सरकार ने उसे जब्त कर लिया और गाने वालों का दमन भी किया क्योंकि उसके बाद से लोग ऐसे डर गये कि गदर की बात भी किसी से न करते। उसके बाप ने उसकी एक नकल छिपा रक्खी थी। मेरे बहुत पीछे पड़ने पर एक दिन उसने मुझे लाकर वह लिखित चौपाई बताई। खेद है कि आज मुझे उसकी शुरु की दो ही लाईनें याद रह पाई हैं। एक बार देखने से याद भी कितनी रहती? परन्तु अब कुछ याद नहीं रहा। पंक्तियाँ ये हैं-

मंडी लई, किला बनवाया
अंग्रेजों से बैर बढ़ाया।।

मालागढ़ को आमतौर पर मंडी ही कहते थे। अन्त में मैने माँ से पूछा। उस दिन से माँ रात को प्रायः गदर की कहानियां सुनाया करती थीं। उसका सार इस प्रकार था-

फिरंगी जब से आये, तब से गांवों की तकलीफें बहुत बढ़ गई थीं। उसके पहले मराठे और मुगलों के राज्य में लोग ज्यादा सुखी थे। हमारे इलाके में जो कुछ मुसलमान नवाब थे, वे हिन्दुओं में से ही और कितने ही हम लोगों में से समय-समय पर मुसलमान बने हुए थे। वे वहां के पुराने रीति-रिवाज जानते थे। पहले बाग लगाने पर कोई लगान नहीं लिया जाता था। जानवरों के लिए हमारी फसलें चरी, मेथी, रिजका, जई, गाजर, मूली, तमाखू बोई जाती तो उस पर भी कोई लगान नहीं लिया जाता था। इससे लोगों को पशुओं को रखने में कोई दिक्कत न होती थी और जमीन को भी खाद कम देना पड़ता था। सागभाजी भी बारहों मास मिलती रहती थी। इसके अलावा गांव की हद की सारी भूमि पंचायत की होती थी। एक तरह से पंचों का ही गांव था। हमारी कचहरी थी, हमारे ही कानून चलते थे। नवाब भी उनकी मानते थे। पहले गांवों की सालाना रकम मुकर्रर थी। पीछे लगान भी लगा तो सिर्फ खेती पर । पंचायत ही चुंगी लगाती और वसूल करती थी।

परन्तु फिरंगियों ने आते ही पंचों के सब हक छीन लिये। सारी जमीन पर कई गुना टैक्स लगा दिया। इसलिए कई वर्षों से लोग बिगड़ रहे थे। मैं अपने छुटपन से

इनकी बुराईयाँ सुनती आई थीं। लोग कहा करते थे कि शेख, सैयद और पुराने मुसलमान अंग्रेजों के खिलाफ हैं। इनमें एका हो जाए तो फिरंगियों को भगा दिया जाय। आखिर गदर के पहले के गढ़ (मुक्तेश्वर) के मेले पर सुना कि सबमें एका हो गया है। पहले मंडी में किला नहीं था। जल्दी-जल्दी वह बनाया गया। सब गांवों ने मदद दी। गूजर, राजपूत, लोधे, अहीर, मुसलमान आदि के बड़े-बड़े जत्थों में से उनके मुखिया ही सेनापति बनाए गए। अपने यहां से मेरे दादा जी (इन्द्रसिंह जी) मुकर्रर हुए। मेरे बड़े ताऊ जी भी उनके साथ रहते थे। फिर बहदा (गदर) मच गया। कभी-कभी ये लोग महीनों बाहर रहते। नवाब ने खुल्लमखुल्ला तो विरोध नहीं किया परन्तु वैसे मिला हुआ था। उसके पास के जाट भी विद्रोह में साथ नहीं हुए, परन्तु विरोध में भी कुछ नहीं किया क्योंकि इधर वे थे भी थोड़े ही। फिर लड़ाई नजदीक आ गई। तब बीचबीच में जल्दी आ जाते थे। यहां आकर ये लोग कमर खोलते, तब कितनी ही गोलियां कपड़ों में से निकल पड़तीं।

"वे लगती नहीं थी क्या? मैने यह सुनकर पूछा, माँ ने सरल विश्वास से कहा- देश और धर्म के वास्ते लड़ने वालों की भगवान रक्षा करता है।"

• • • • • • • • •

उन दिनों हवा ही ऐसी हो गई थी। हम लोग (स्त्रियाँ) खेतों पर होतीं और कोई गोरा या गोरी (स्त्री) पैदल या घोड़े पर भागते अकेले-दुकेले निकलते तो हम लोग ही घेरकर पकड़ लेतीं। गोरे लोग इतने डरते थे कि हमें देखते ही हथियार डाल कर गिड़गिड़ाने लगते और कहते- "हमको बचाओ।"

"फिर पकड़ कर क्या करतीं?" मैने पूछा। माँ ने कहा- "हम लोग उन्हें किसी खाली मकान में बंद कर देतीं और जब मर्द आते तो उनको सुपुर्द कर देतीं। वे उन्हें मंडी पहुंचा देते। मर्द कभी-कभी सामना करने वालों को मार भी देते, परन्तु स्त्री और बच्चों को कोई नहीं मारता था।"

लोगों का विचार चौमासे के शुरु होते ही बगावत करने का था, परन्तु और जगह पल्टनियों ने पहले ही शुरुआत कर दी। फिर भी हमारे लोगों ने बरन (बुलन्दशहर) अंग्रेजों से छीन लिया। वहां जाट और राजपूत अंग्रेजों के पक्ष में लड़े, किन्तु थोड़े दिनो बाद ही फिरंगियों की फौज आ गई। हमारे लोगों ने भी डटकर सामना किया। उन दिनों सबसे ज्यादा चहल रहती। सैंकड़ों आदमी गांवों से इकट्ठा होकर मोर्चों पर खाने-पीने की सामग्री और गोली बारुद लाने-ले जाने वालों में रहते। बहुतों ने अपने घर का काम ही छोड़ दिया था। फिर घर से एक आदमी तो हर एक को मोर्चे पर भेजना पड़ता ही था। हम घर का और गांव का काम भी सम्भालतीं और मोर्चों के लिए सामान भी इकट्ठा करके रखतीं क्योंकि लेने वाले अकसर रात में ही लेने आते थे। दिन-रात इसी की चर्चा रहती और हम लोग हरदम लड़ाई की खबरें सुनने को ही कान लगाये रहतीं। कई बार आदमियों की कमी होने के कारण लड़कों को भी मोर्चों पर भेजना पड़ता और कई दुश्मन रास्ता रोक लेते तो महीनों रसद भी नहीं भेज पाते। लोग

कई-कई दिनों तक भूखे प्यासे ही लड़ते रहते थे। जब-जब मोर्चे पर से छुट्टी लेकर या किसी काम से कोई आता तो सारा गांव उसे घेर लेता और तरह-तरह के प्रश्न किये जाते। वह लोगों के व्यक्तिगत साहस का वर्णन करता। किस प्रकार किसी ने अकेले ही घिर जाने पर पांच, दस या बीस का मुकाबला किया। अपने हथियार टूट या छिन जाने पर दुश्मन के ही छीन कर उन्हें मारा। किस प्रकार कोई लड़ाई के बीच में से अकेला ही अपने पांच घायल साथियों को उठा लाया। किस प्रकार कोई शत्रु के मोर्चे में रात को घुसकर गोला बारुद नष्ट कर आया या सेनापति को मार आया। कौन भीम की तरह लड़ा, कौन अभिमन्यु की तरह और कौन बूढ़े भीष्म की तरह। किसी की टुकड़ी ने यह खबर पाकर कि 'फिरंगी' किसी गांव या कस्बे की औरतों को पकड़ लाए हैं, बिना ही सेनापति से पूछे हमलाकर उन्हें छुड़ा लिया एवं उनके घर पहुंचा दिया इत्यादि। यह बातें सुनकर लोगों में जोश-रोश की बिजली दौड़ जाती। रातों-रात उन वीरों के पंवाड़े जुड़ जाते और सुबह लोग उन्हें गाते हुए नजर आते। उनकी कहानी एक दो दिन में ही सारे परगने में फैल जाती और उसे सुनकर बालिग लड़के भी मोर्चे पर जाने की जिद करने लगते और कितने ही छिप कर भाग भी जाते।

इस प्रकार का साहस दिखलाते हुए जो लोग काम भी आ जाते, उनकी मृत्यु की खबर से उनके कुटुम्बियों तक में संतोष और अभिमान की भावना ही अधिक पैदा होती। खबर आते ही प्रायः सारा का सारा गांव नदी पर उनका तर्पण करने जाता और कई दिनों तक गांव के ही नहीं आसपास के लोग उसके यहां बैठने, सांत्वना देने जाते, फिर वह चाहे कितना ही अकिंचन क्यों न हो। उस दिन से उसके कुटुम्ब की खेती, भरण-पोषण आदि का जिम्मेदार गांव बन जाता। उस समय यह घटनाएँ मुझे व्यक्तिगत नामों सहित सुनाई गई थीं, परन्तु उस समय यह किसे कल्पना थी कि मुझे ही अपने जीवन में इस कहानी को दुहराना पड़ेगा।

मुझे यह बातें इतनी आकर्षक लगतीं कि मैं प्रायः नित्य ही माँ के पीछे पड़ता। वह जब अवकाश मिलता, सुनाती भी थी परन्तु साथ ही हमेशा यह भी कहती कि "किसी से यह बातें कहना मत, नहीं तो फिरंगी पकड़ ले जावेंगे।" मैं किसी से कहता तो नहीं परन्तु वे बातें प्रायः दिन-रात मेरे मस्तिष्क में चक्कर काटा करतीं। फिरंगियों को देखने की भी उत्सुकता बढ़ती जाती। साथ ही इस बात का पछतावा भी होता कि ऐसे समय में मैं न था। कभी मंसूबे बांधता कि अब मौका आया तो मैं यह करूँगा, मैं वह करूँगा। साथ ही यह धुन बैठ गई कि इनके लिए बलवान होना जरुरी है। इस प्रकार कम से कम इन शेखचिल्ली वाली कल्पनाओं से इतना लाभ तो हुआ कि मेरा झुकाव व्यायाम, कुश्ती आदि की ओर विशेष हो गया। माँ ने मुझे उत्साहित किया। उसने कहा जो लंगोटी (ब्रह्मचर्य) का पक्का होता है, वही बलवान रह सकता है और कमजोर संसार में कुछ नहीं कर सकता।

फिर उलटते पाँसे की कहानी शुरु हुई। माँ ने कहा कि अंत में हमारी हार शुरु हुई। रोज हारे हुए गांवों पर फिरंगियों के जुल्मों की कहानियां सुनने को मिलतीं।

नवाब भी भागने की योजना बनाने लगे। यह निश्चय हुआ कि जब तक नवाब ठिकाने न पहुंच जाये, तब तक लड़ाई जारी रक्खी जावे और नवाब का चला जाना प्रगट न किया जावे। यह बात हम लोगों को तब मालूम हुई, जब मेरे दादा कुटुम्बियों से अंतिम विदा लेने और हम लोगों को भागकर अन्यत्र छिपाने की बात करने आये।

मैने कहा कि हमारे लोगों की हार क्यों हुई? माँ ने दुःखित स्वर में कहा कि "इस देश में सदा से तीन कंटक रहे हैं। ब्राह्मण, कायस्थ और राजा जमींदार आदि। यह लोग हर बात में अगुआ होकर और लोगों को खड़ाकर लेते हैं और फिर अपना लालच पूरा होते ही सबको बीच में धोखा दे देते हैं। इस बार भी सुना था कि इन्हीं लोगों ने धोखा दिया था।"

• • • • • • • • •

तीसरी ही रात हम लोग न चलने योग्य सामान जहां-तहां गाड़ कर और जरुरी सामान साथ लेकर निक़ल गए। रास्तें में भी प्रायः सभी गांवों के लोग भाग गये थे या भाग रहे थे। हम लोगों ने जिन रिश्तेदारों या मित्रों के यहां शरण पाने का सोचा था, वहां भी वह सुविधा नहीं मिली। कारण सब ही तो बागी हो चुके थे। अतः विपत्ति सर्वत्र समान सी ही थी। फिर फिरंगी बुरी तरह अत्याचार कर रहे थे। दोषी-निर्दोषी सब एक ही लकड़ी से हाँके जा रहे थे। कुछ ऐसे गांवों के पास से भी निकले, जहां से विजयी अंग्रेजी फौज घूम चुकी थी। उनमें अधिकतर जला दिये गये थे। कहीं-कहीं पेड़ों पर फाँसी लगाकर सैंकड़ो स्त्री-पुरुष लटका दिये गये थे। उनके भयानक चेहरों की ओर देखा भी न जाता था। किसी की आँखें निकली थीं, किसी की जीभ, किसी के गहने खींच लिए जाने से नाक कान कटे थे और रक्त बह रहा था। किसी के कुछ अंग काट डाले गये थे और कुछ के सिर भालों से गोद दिये गये थे। छोटे-छोटे बच्चे भी काट कर वहीं डाल दिये गये थे। यह दशा देखकर लोगों में बड़ा भय और रोष फैल गया। हम लोग विचार कर रहे थे कि झुण्डों में न रह कर बिखर जायें परन्तु यह स्थिति देखकर वह विचार त्याग दिया।

बड़ी मुसीबत थी। प्रायः जंगलों में डेरे रखते। दिन में पुरुष इधर-उधर ऊँचे स्थानों पर बैठे रहते। डेरे में केवल स्त्रियाँ और पशु आदि थोड़ी दूर पर अलग झुण्डों में रहते। कितनी ही स्त्रियाँ गर्भवती थीं। उनके बच्चे हो गए। हरदम चौकन्ने रहना, जानवरों, रोगियों, प्रसूताओं आदि की सम्भाल रखना आदि सब ही करना पड़ता था। उस समय जाति-भेद आदि सब गायब हो गये थे। सब ही भाई-भाई की तरह रहते थे। एक ही सुविधा थी कि लोगों की परिचित हो या अपरिचित, पूरी सहानुभूति होती थी। इससे जीवन की आवश्यक सामग्री आसपास के गांवों में से मिल जाती थी। परन्तु कभी-कभी दमन करने वाली टुकड़ियाँ निकट आ जाती थीं, वह भी न मिलती थी, तब कई-कई दिनों तक दूध या जंगली चीजों के सहारे ही दिन काटने पड़ते थे। बहुत से गांव वालों ने इन अत्याचारों का डटकर सामना भी किया। 'तिगांव' ऐसे प्रतिरोध के लिए बहुत प्रसिद्ध हो गया था। कुछ चालाक लोग पाँसा पलटता देख कैद किये हुए फिरंगी

स्त्री-पुरुषों या बच्चों को किसी छावनी में पहुंचाकर फिरंगियों के प्रीतपात्र भी बन गये थे। ऐसे गांव विशेष सुरक्षित थे। इन लोगों ने अपनी ऐसी स्थिति से लाभ उठाकर बहुत से अपने लोगों को सुरक्षित भी रख लिया। बहुतों ने विद्रोहियों को पकड़वाने की नीचता भी की और विद्रोहियों ने भी जहां तक बना, ऐसे लोगों से बदला भी ले लिया, इसलिए यह बीमारी अधिक नहीं फैली। प्रायः ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध उनका ही सारा गांव एक हो जाता था।

एक बार हम लोग अनूपशहर के पास जंगलों में थे। निकट कोई सैनिक टुकड़ी आने से गांवों में आना बंद था। अतः पुरुष कुछ खाद्य पदार्थों की तलाश में और शत्रु का पता लेने दूर निकल गये थे। हम बहुत सी स्त्रियाँ पेड़ों के नीचे बैठी कपड़ों की मरम्मत कर रहीं थीं। इसी समय पास के एक गांव का बारह-तेरह वर्ष का मुसलमान का एक लड़का आकर बोला- "कुछ सिपाही इधर आ रहे हैं।" यह कहकर वह भाग गया। हम लोग हक्की-बक्की होकर खड़ी हो गयीं। इतनें में एक तरफ से आवाज आई "लाल बीबी"। साथ ही कुछ गोरे और पंजाबी दौड़कर आते दिखलाई दिये। गनीमत हुई कि हम तो कपड़े समेटने में ही रहीं किन्तु कुछ लड़कियाँ भाले-कुल्हाड़ी आदि उठा लाईं, और दो कड़ाबीन (बन्दूकें) लेकर खड़ी हो गईं। उन्हें देखकर सिपाही कुछ सहमें। इतनें में ही हम भी संभल गईं और भाला, कुल्हाड़ी जो जिसके हाथ पड़ा उठा लिया। वे लोग हाथ हिला कर कुछ कह रहे थे। हमारा ध्यान उधर रहा।

अचानक पीछे से दो बन्दूकों वाली लड़कियों पर वे टूट पड़े। लड़कियाँ बन्दूक तो नहीं चला सकीं परन्तु एक ने हमलावर को कुंदा मारकर गिरा दिया। दूसरे ने लड़की और बंदूक दोनों को बुरी तरह पकड़ लिया था। उस पर एक तीसरी लड़की ने कुल्हाड़ी से वार किया। इधर से हम लोग भी टूट पड़ीं। दूर खड़े सिपाही और गोरे भी आकर जूझे। यह स्पष्ट था कि वे हम लोगों को पकड़कर बलात्कार करना चाहते थे इसलिए मारना न चाहते थे। इसका लाभ उठाकर हम लोगों ने उनमें से कई को अच्छा घायल कर डाला। अब वे भी संगीने चलाने लगे। लड़कियों ने इस समय बड़ा साहस दिखलाया। उन्होंने उनमें से दो की नाक पर मुक्का मारकर बन्दूकें छीन लीं। दो लड़कियों को उन्होंने भी घायल कर दिया था। फिर भी मन ही मन हम लोग बहुत डर रहीं थीं। सोचती थीं कि न जाने आज क्या होगा? अचानक हम लोगों का हल्ला सुनकर ग्वाले गाय-बैलों को भगाकर ले आये और सारे पशु एकदम उन लोगों पर टूट पड़े। इस हमले से वे लोग एकदम घबड़ाकर भाग छूटे और हमारी रक्षा हो गई। पशुओं ने काफी दूर तक उनका पीछा किया और तीन-चार को घायल कर दिया। कुछ ही मिनटों में यह सारा काण्ड हो गया। इस बीच में हल्ला सुनकर छिपे पुरुष भी काफी इकट्ठा हो गए। चार घायल वहीं पड़े थे। उन्होंने उनको ठिकाने लगाया और उनका गोली बारुद हस्तगत किया। हम लोगों ने संतोष की सांस ली।

परन्तु यह संतोष क्षणिक था। विचार करते ही भावी खतरे का चित्र हम लोगों के सामने खिंच गया। यह निश्चय था कि वे लोग बदला लेने फिर आयेगें। दिन अभी

प्रायः पहर भर बाकी था। रात हुए बिना निकल न सकते थे। हां, पुरुषों को यह पता चल गया था कि इधर जो टुकड़ी घूम रही है, उनमें दो-सौ से अधिक आदमी नहीं हैं। फिर भी तत्काल डेरा डंडा उठाकर कगारों में स्त्रियों को छिपा दिया गया और पुरुष चारों ओर मोर्चा बंदी कर बैठ गए। कुछ लोग ऊँचे-ऊँचे पेड़ों पर बैठा दिये गये। हमारे गांवों के आदमी अभी भी नहीं लौटे थे, किन्तु उस समय कोई पराया नहीं था। सब ही अपने थे और सब एक दूसरे के लिए जीने-मरने को तैयार थे।

दिन छिपते-छिपते खबर मिली कि सिपाहियों और गोरों का बल आ रहा था। कुछ साथियों ने आकर समय आने पर क्या करें, यह सब बता दिया और कुछ लड़कों को हमें सूचना देने को मुकर्रर कर दिया। हम लोगों की हालत उस समय बड़ी भयानक हो रही थी। एक तो हमारे गांव के लोग नहीं लौटे थे उनकी चिन्ता, फिर इस नई विपत्ति का सामना। मन ही मन हम लोग घरवालों को कोस रही थी।

धीरे-धीरे अंधेरा पड़ा, साथ ही चारों ओर कड़ाबीने (बन्दूकें) गरज उठीं। हम लोगों के कलेजे हिलने लगे। तरह-तरह के विचार मन में चक्कर लगाने लगे। हमारे आदमी अब तक क्यों नहीं आये?कहीं मारे गये या जिन्दा हैं?आज हम लोग बच सकेंगे या घरवालों का मुँह देखे बिना ही मरना होगा। कभी सोचती कि निकलकर देखें कि क्या हो रहा है, किन्तु हमें अपनी जगह से हिलने की सख्त मनाही थी। बन्दूकें चलनें की आवाजें आ जाती थीं। करीब दो घंटे बाद नजदीक की बन्दूकें चलना बन्द हुईं किन्तु दूर अब भी चल रहीं थीं। हमारा एक-एक क्षण एक-एक बरस की तरह बीत रहा था। बाहर क्या हो रहा है क्या स्थिति सामने आने वाली है, यह कुछ समझ में नहीं रहा था।

थोड़ी देर बाद कुछ लोग ढेर के ढेर हथियार और कारतूस, कपड़े आदि लेकर आए और हम लोगों के पास रख गये। हम लोगों ने उन्हें घेरकर पूछताछ शुरु की। उन्होंने कहा कि बाद में बतायेंगे। एक टुकड़ी का सफाया हो गया है। एक से लड़ाई हो रही है। मैने कहा- ''और हमारे आदमी?'' उसने कहा- घबराओ नहीं सब हैं। कहकर वे लोग भाग गये। हमें कुछ संतोष हुआ। दूर बंदूकें अब भी चल रहीं थीं। हमने सामान को संभाला। वे सिपाहियों की वर्दियां, हथियार आदि थे। यह छीने हुए कपड़े, हथियार आदि काफी काम देते थे।

कुछ देर बाद कुछ लोग फिर सामान लेकर आये और कहा ''देखाभाली में समय मत गंवाओ और सामान बाँधकर चलने को तैयार हो।'' यह हमें भी दिखलाई दे रहा था कि उपद्रव के बाद यहां ठहरना खतरे से खाली नहीं है। अतः हम लोग सामान बाँधने में लगीं।

आखिर करीब डेढ़ पहर रात गए सब लोग आये, सामान काफी बढ़ गया था तथा तुरन्त चलना था। अतः सब तैयारी में लगे। यहां से आसपास के गांवों के लोग भी साथ हो गए। जितनी वर्दियां थीं उन्हें पहनकर जवान लोग हथियार लेकर इस काफिले को घेरे हुए चलने लगे। प्रायः रात को चलते और दिन को कहीं ठहर जाते। कभी-कभी यह खबर मिलने पर कि रास्ते का भय नहीं है, दिन में भी सफर करते। एक टोली घोड़ों

पर बराबर आगे और आस पास की खबर लेते रहने को हमसे एक मंजिल आगे चलती थी। उसी की भेजी खबर के आधार पर आगे बढ़ते और ठहरते। उस समय लोगों को सिक्खों, जाटों और राजपूतों पर विश्वास न रहा था। वे अंग्रेजों से मिल गए थे। अतः उनके गांवों से बचकर निकलते थे। सरकारी वर्दीधारियों को देखकर वैसे भी लोग पास न आते थे। लोग समझते थे कि फौज हमें पकड़कर ले जा रही है। इस प्रकार उस सामान ने खूब काम दिया। वैसे रात को सेना या पुलिस के आदमी भी उन दिनों बाहर निकलने की हिम्मत बिना विशेष तैयारी के न करते थे।

• • • • • •

रास्तें में हमें उस दिन के घटना चक्र का पूरा हाल मालूम हुआ। उस दिन हमारे लोगों को रास्ते में खबर मिली कि निकट के एक गांव पर एक फौजी टुकड़ी गई है। अतः यह उसका पता लगाने उस ओर बढ़ गए, परन्तु जब यह पहुंचे तो टुकड़ी जा चुकी थी और गांव धू-धू जल रहा था। कुछ स्त्रियाँ, लड़कियाँ और लड़कों की लाशें पड़ी थीं। बहुत से लोग इकट्ठे हो रहे थे और आते जा रहे थे।

पूछताछ से मालूम हुआ कि इस गांव ने विद्रोह में भाग नहीं लिया था। अधिकतर लोग गरीब थे। एक तो आतंक फैल रहा था दूसरे फौजी टुकड़ी आई हुई थी। इसलिए प्रायः मर्द दिन में गांव में न रहते थे। आज सिपाही यहां आये और रसद माँगी। स्त्रियों ने पुरुषों की अनुपस्थिति में कुछ देने से इंकार कर दिया। बस इसी पर उन नर पशुओं ने कितनी ही स्त्रियों को भ्रष्ट किया और फिर कुछ को मारकर आग लगा कर भाग गए।

इस घटना पर सब ही लोगों में काफी रोष फैल गया और वे प्रतिशोध लेने पर तुल गए। कुछ वृद्धों ने उनको तुरन्त हमला करने से रोका और फिर योजना बनाई गई। परिचय होने पर हम लोग भी इस परामर्श में शामिल किये गये और उस प्रदेश में अपरिचित होने से हमें कुछ स्थानीय आदमी देकर शत्रु की स्थिति का ठीक-ठीक अंदाजा लगाने उन्होंने भेजा। लोगों में रोष होना स्वाभाविक भी था। उनके विचारों के अनुसार स्त्री-बच्चे किसी के भी हों, उन पर बल प्रयोग जघन्य कर्म था। इतने लम्बे संघर्ष और महीनों कैद रखने पर भी उन्होंने कभी किसी अंग्रेज स्त्री के सम्मान को धक्का नहीं पहुंचाया था। न बच्चों पर हाथ उठाया था। यद्यपि पराजय की खबरों से लोग हताश होने लगे थे, परन्तु अभी उनका स्वाभिमान नष्ट नहीं हुआ था। इसलिए ऐसी नीचता से लोगों की दृष्टि में अंग्रेज सबसे अधिक घृणास्पद बन गए थे। सबने यह निश्चय कर लिया कि कम से कम इस टुकड़ी में से एक को जिंदा न छोड़ा जाय।

हमारे आदमियों ने दो आदमी हमारे आसपास छिपे हुए साथियों को खबर देने और तैयारी करने के लिए भेज दिये और स्वयं टुकड़ी के कैम्प की ओर गए। वहां पहुंचते-पहुंचते किसी के जरिये उन्हें अपने डेरों पर हमला होने की खबर मिल गई। कुछ आसपास के लोगों को बेगार में पकड़ रक्खा गया था। उनसे इनको बहुत सी बातों का पता लग गया और उनको यह जानकर प्रसन्नता हुई कि सब टुकड़ियों को एकत्र करने

के लिए सवार हो गए हैं और हमारे डेरों पर ही हमला होगा। इससे इन लोगों को भी अपनी योजना बनाने में सहुलियत हो गई। आसपास के गांवों से भी काफी लोग शस्त्रादि लेकर एकत्र हो गए थे। वे खाली (नालों) में जगह-जगह छिपे थे। इन लोगों में से कुछ लोग तो कैम्प की हलचलों पर नजर रखने को वहीं रहे और शेष लोगों ने वापस जाकर सब व्यवस्था कर ली। उन्होंने अपने आदमियों को पुराने सैनिकों के नेतृत्व में चार टुकड़ियों में बाँटा। एक को कैम्प में रहे हुए लोगों को खत्म करने के लिए मुकर्रर किया। दूसरी को शत्रु की पीठ पर, तीसरी को डेरों के आसपास और चौथी को डेरों से कुछ दूर रास्ते के पास ही यथा अवसर काम करने के लिए।

परिस्थिति अनुकूल बनती गई। टुकड़ियों को एकत्र होते दिन अस्त हो गया। विद्रोह क्षेत्र में रात को हमला करना बुद्धिमानी न थी, परन्तु शायद अपने चार घायलों के विद्रोहियों के कब्जें में होने के कारण और कुछ अपनी श्रेष्ठ सैनिकता के मद में उन्होंने केवल कुछ आदमी कैम्प की रक्षा को छोड़कर उसी समय कूच कर दिया।

डेरों का क्षेत्र ऊबड़-खाबड़ और गहरे नालों का था, अतः अंग्रेज सेनापति ने स्थिति को देखकर आधी टुकड़ी एक ऊँची जगह पर रोक दी और शेष को डेरों की ओर भेजा। अंधेरा हो गया था और वे टुकड़ियाँ मशालों के सहारे घूम रही थी। अतः उनकी गतिविधि देखने में आसानी हो गई। यद्यपि वे भी कई टुकड़ियों में बँटकर इधर-उधर खड़े रहे और एक टुकड़ी दिन में हुई घटना की जगह गई। वहां कुछ न पाकर वह आगे बढ़ी और गहरे नाले में उतरी। इस नाले में एक लाश पड़ी थी। उसे देखते ही उनमें से एक ने ऊपर चढ़कर कुछ संकेत किया और अन्य टुकड़ियाँ वहां से चली गईं।

उनकी तरफ ही सुरक्षित टुकड़ी ने दोनों के बीच में धुंस कर टीले वाली टुकड़ी का रास्ता काट दिया। उधर ज्योंही पहली टुकड़ी नाले में उतरी कि चारों ओर से उन पर गोलियों की बौछारें होने लगीं। उसी समय रास्ता काटने वाली टुकड़ी ने भी पीछे से हमला कर दिया। विद्रोही नीची और सुरक्षित जगह में मोर्चा जमाये हुए थे। उधर यहां की बन्दूकों की आवाज सुनते ही कैम्प पर भी वहां की टुकड़ी ने हमला कर दिया। उसे बेगारियों ने काफी मदद की। इस प्रकार उन लोगों ने अपनी समझ में तो उस टुकड़ी का पूरा सफाया कर दिया। सबसे बड़ी बात यह हुई कि हमारे लोगों में कुछ घायल जरुर हुए, परन्तु मरा कोई नहीं।

• • • • • • •

रास्तें में हमें मालूम हुआ कि दिल्ली में लड़ाई चल रही है। विद्रोहियों की शक्ति अभी बाकी है और वे अधिकतर नदियों के किनारे-किनारे फैल गये हैं। अतः हम लोगों ने जमुना का किनारा पकड़ा। केवल जहां सुरक्षा की दृष्टि से किनारा छोड़ना जरुरी होता, वहीं छोड़ते। इधर हमें सुविधा खूब रही। अंग्रेज शहरों में लड़ रहे थे, परन्तु देहातों में प्रायः बागियों का बोलबाला था। जो गांव विद्रोही नहीं हुए थे या प्रतीक्षा कर रहे थे, इस समय अंग्रेजों के अत्याचारों की कहांनियाँ सुन-सुन कर वह भी खड़े हो गए थे, इस स्थिति से निराशा की जगह फिर लोगों में जोश बढ़ने लगा और नई-नई योजनाएँ

सोचने लगे।

हम इस बात पर प्रायः सब एकमत थे कि बड़े-बड़े लोगों का सहारा छोड़ हम लोगों को स्वयं कुछ करना चाहिए, परन्तु किया कैसे जाय? अंत में यह निश्चय हुआ कि किसी राज्य पर कब्जा कर लिया जाय ताकि युद्धोपयोगी साधन और स्थान हाथ आ जाय और फिर गुरिल्ला युद्ध द्वारा अंग्रेजों से ही शस्त्रास्त्र छीने जायें। रास्तें में हमें हमारे जैसे कितने ही दल मिले। वे भी इस योजना पर सहमत थे। आखिर में सबने धौलपुर एकत्र होना तय किया, क्योंकि वहां का राजा तो देशद्रोही था, परन्तु जनता प्रायः सब हमारे पक्ष की सुनी जाती थी।

रास्तें में दिल्ली के हिन्दू-मुसलमान विद्रोहियों का एक दल भी हमसे आ मिला। यह काफी युद्ध सामग्री भी साथ ले आया था। इस प्रकार प्रायः दो महीने में आगरे की खैराबाद और बाह तहसीलों में होते हुए हम लोग धौलपुर पहुंचे एवं चम्बल के कगारों में जगह-जगह डेरे लगाए। धीरे-धीरे यहां हमें बहुत से हमारे रिश्तेदार और परिचित मिल गये।

• • • • • • • • •

अब धौलपुर पर अधिकार का प्रयास होने लगा क्योंकि डर था कि दिल्ली से निबटते ही अंग्रेज इधर घूमेंगे और यह देशद्रोही सबका नाश करा देगा। एक सुविधा थी कि धौलपुर राज्य में जाट प्रायः नहीं थे। सबसे अधिक गुर्जर, दूसरे नम्बर पर लोधे और तीसरे नम्बर पर राजपूत थे। इनमें बड़गुर्जर (जो शिखरवार कहलाते थे) और पँवार हमारे साथ थे। उधर मुसलमान कार्यकर्ता मेवों को तथा देशी मुसलमानों को तैयार कर रहे थे। धौलपुर की सेना में भी सबसे अधिक गुर्जर थे, यह एक और सुभीते की बात थी। लोग नहीं चाहते थे कि देशी लोगों में आपस में रक्तपात हो। इसलिए सेना को मिलाने का प्रयत्न हुआ और उसमें सफलता भी मिलीं। हाँ, कीमत बहुत देनी पड़ी। अर्थात् सेना के सूबेदार को जो एक गुर्जर था, राजा बनाना स्वीकार किया। यद्यपि वैसे वह योग्य नहीं था, किन्तु उस समय हम लोग अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए सब कुछ करने को तैयार थे। इस प्रकार तैयार होने पर एक रात विद्रोह का बिगुल बज उठा और राजा अपने बचाव का थोड़ा सा प्रयत्न करके आगरा भाग गया। लोगों ने वायदे के अनुसार देवहंस को राजा बना दिया। अभी फौजें आगरे में पड़ी थीं। अतः हम लोगों को सतर्क रहना पड़ता था। कितने ही लोग पहाड़ों और बीहड़ में नए स्थान देखने नित्य जाते थे और कितनी ही जगहों पर मोर्चे बनाते थे।

इसी बीच तात्यां टोपे और मराठों ने ग्वालियर ले लिया। अंग्रेजी सेना उधर गई। इससे हम लोगों को मौका मिल गया। नए राजा का हुक्म होते ही आगरा के धौलपुर से मिले हुए अधिकतर भाग पर कब्जा हो गया। राजा ने नए कब्जे में आये हुए सीमा के कई भाग अपने साथियों को जागीर में दे दिये। बहुत से लोगों ने समझाया कि जागीरें न देकर सीधा अपना शासन स्थापित करें, परन्तु इधर के लोग देशी राज्यों के सम्पर्क में रहे होने से उनकी नकल के आदी थे। उसे विश्वास था कि जागीरें होने से उक्त भूमि के

लिए वे अंग्रेजों से लड़ेंगे, किन्तु परिणाम उल्टा हुआ। समय आने पर अपनी जागीर सुरक्षित होने का आश्वासन मिलते ही वे अंग्रेजों से मिल गये। लालच के आधार पर रक्षा व्यवस्था का नतीजा होता भी क्या !

किन्तु फिलहाल हमारा एक राज्य बन गया और लोग यह कल्पना करने लगे कि यदि ग्वालियर में अंग्रेज हार गये तो फिर बाजी पलट सकेगी। स्थिति विषम बनाने के लिए कुछ उग्र लोगों ने छापामार युद्ध शुरु भी किया परन्तु बीच में राजाओं की फौजें पड़ी थी जो अंग्रेजों से मिले हुए थे। राजा और जागीरदार सब जगह देशद्रोही हो रहे थे। प्रजा वर्ग सब जगह उठने को तैयार था, परन्तु इन राजाओं ने उनके स्वाभिमान को इतना कुचल दिया था और उन्हें इतना जकड़ रक्खा था कि वे अपनी इच्छानुसार आचरण करने का साहस न करते थे। इधर क्रांति के नेता भी राजाओं की ही खुशामद उन्हें विद्रोह में शामिल करने के लिए करते थे। यही नहीं, वे ग्रामीण विद्रोही नेताओं को भी ऐसा न करने से रोकते थे और इन बातों की खूब आलोचना होती थी। वे कहते थे कि यदि ऐसा किया जाए तो राजा लोग स्वयं अंग्रेजों की स्थिति में पड़ जायेंगे और क्रान्ति सफल हो जायेगी। किन्तु उनकी कोई सुनता नहीं था। उन्हीं दिनों सुना कि दिल्ली से आए हुए कुछ लोगों ने मेवों और मीणों को उठा (भड़का) दिया था, परन्तु उन्हीं के नेताओं ने उन्हें रोक दिया। उठने वालों को राजाओं ने कुचल दिया एवं मीणों को जरायमपेशा क़रार दे दिया। हां, करौली के कुछ जागीरदार और वहां की जनता विद्रोह से पूरी सहानुभूति रखते थे और छिपे-छिपे सहयोग भी देते थे। वहां के राजपूतों और गुर्जरों में भाईचारे की भावना थी।

इसी बीच, खबर मिली कि हमारे क्षेत्र पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। पांच महीनों तक तो अंग्रेजों की दाल न गली, परन्तु कुछ राज्यों की फौजें आ जाने से अंग्रेजों का बल बढ़ गया। नवाब कुछ दिनों बुलन्दशहर के मोर्चे पर सामना करके योजना के अनुसार अवध चला गया। जनता के नेता पहले बुलन्दशहर की ही रक्षा करते रहे, फिर शहर छिन जाने पर मालागढ़ पर मोर्चा जमाया। इसी प्रकार प्रायः एक महीने में अंग्रेजी फौजें पांच कोस आगे बढ़ गई। अंत में भारी तोपखाना लगाया गया। तब वह छोटा सा किला टूटा और क्रांति के नेता धराशायी हुए।

मालागढ़ के पतन के बाद वही अत्याचार वहां भी हुए जो और जगह हुए थे। गुर्जरों पर अंग्रेजों का सबसे अधिक रोष था क्योंकि उनके नेता न केवल अंग्रजों के किसी लालच में न आए, प्रत्येक गांव में पराजय के बाद भी उन्होनें जगह-जगह मुकाबला जारी रक्खा। इस दमन के फलस्वरुप एक बार यह सारा इलाका उजड़ गया। वहां से भागते हुए बहुत से लोग प्रायः नित्य ही आते और वीरता तथा अत्याचारों की कहांनियां सुनाते। रोज उन कहानियों के गाने जुड़ जाते और वे एक ही दिन में गांव-गांव में फैल जाते। महीनों तक मालागढ़, उनके नेता इन्द्रसिंह और दूसरे गांवों और उनके नेताओं की वीर गाथाओं से यह प्रदेश गूंजता रहा। यद्यपि हमारे जिले के दबने की खबर लोगों के लिए बड़ा धक्का और निराशा बढ़ाने वाली बात थी, परन्तु जिस बहादुरी और

दृढता से वहां की जनता लड़ी, उससे पैदा हुई भावनाओं में वह निराशा मे डूब गई। राजपूत और जाटों को छोड़कर सब ही जातियों ने वीरता और देशभक्ति दिखाने में एक-दूसरे से होड़ लगाई थी। यहां तक कि चमार भंगी आदि जातियों ने भी किसी से कम वीरता नहीं दिखाई। पवाड़ों में इनमें से उस समय हजारों के नाम गाये जाते थे, फिर भी अंग्रेजों ने सिर्फ गुर्जरों और राँघड़ों (देशी मुसलमानों) को ही अपना शत्रु घोषित किया।

कुछ भी हो, इससे यहां एकत्र विद्रोहियों में भी वैसी ही दृढ़ता से लड़ने मरने की भावना बढ़ी और गुर्जरों पर इसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। साथ ही जिनके परिवारों के लोग काम आये या दमन के शिकार हुए थे, उन्हें भी इस माहौल ने उनका शोक हल्का करने और हानि को सह जाने की हिम्मत बढ़ानें में सहारा दिया क्योंकि चारों ओर हमारे जिले और क्रांति के वीरों की प्रशंसा हो रही थी। फिर जो लोग आये थे, उनमें भी बदला लेने की भावना प्रबल थी और वे वही भावना दूसरों में फूँक रहे थे।

आने वाले लोगों से यह भी मालूम हुआ कि मुसलमान बादशाही ने अपनी सरहदों की रक्षा की दृष्टि से जिन मुसलमानों को और मराठों ने मुसलमानों के विरुद्ध सहायक बनाने को जिन जाटों को जागीरें और जिम्मेदारियां दी थीं, वे ही इस समय उनके लिए और जनविद्रोह के लिए भयानक रुप से घातक सिद्ध हुए। वरना अंतर्वेदी (अलीगढ़, एटा, इटावा, बुलन्दशहर, मथुरा, मैनपुरी, मेरठ आदि अंतर्वेद में गिने जाते थे, गंगा और यमुना के बीच का दोआब) अकेला ही बरसों तक अंग्रेजों को नाकों चने चबा सकता था। हर जिले की हार का कारण यही लोग बने थे। यह अपनी जागीरों और जमींदारियों की सुरक्षा की वृद्धि की गारंटी पाते ही अंग्रेजों से मिल गये। दूसरे नम्बर पर कायस्थ थे, जिन्होंने नए जमींदार बनने के लिए न केवल खुद देशद्रोह किया प्रत्युत बहुत से अपने प्रभावाधीन दूसरों को भी घसीटा।

खैर, इस प्रकार वहां विद्रोहियों की संख्या बढ़ती चली गई। अलीगढ़, एटा, हमीरपुर, इटावा, बरेली तक के लोग उधर आ गये। बहुतों ने वहीं जंगलों-पहाड़ों में गांव बसा लिए। ऐसी हालत हो गई कि उस तरफ आसानी से किसी को चढ़ाई करने का साहस नहीं हो सकता था। इसलिए यद्यपि खाने-पीने की चीजें मंहगी हो गईं थी परन्तु बड़ी शान्ति से दिन बीतते थे। जंगल खूब होने से मवेशी रखने की सुविधा थी और इससे बड़ी मदद मिल जाती थी। बहुतों ने आसपास के गांवों में साझेदारी कर ली थी। कभी लोग अंग्रेजों की रसद लूट लाते थे। इससे भी काफी सहारा मिल जाता था। हथियार भी काफी इकट्ठे हो गये थे; परन्तु भारी-भारी तोपें आदि अधिक न थीं। गोला बारुद आदि बनाने के कारखाने भी खुल गये थे और बंदूके बनाने के भी।

कुछ दिनों बाद खबर मिली कि झाँसी की रानी और तांत्यां टोपे हार गये। उससे लोगों में फिर एक निराशा की लहर दौड़ गयी। सब ही अब किसी भी समय अपने रक्षा स्थान पर हमला होने की राह देखने लगे। फिर भी लोग अंत तक लड़ने को उद्यत थे। दो-चार दिन बाद ही खबर मिली कि तात्या टोपे बच निकला है। इससे फिर लोगों

को आशा बँधी। सब लोग चाहते थे कि वह किसी तरह एक बार वहां पहुंच जाएं तो उसके नेतृत्व में आगरा ले लिया जाय। उसके पास खबर भेजने की कोशिश भी की गई। इस बात की खबरें बीच-बीच में आती रहीं कि वह इस ओर आ रहा है। एक बार तो उसके नजदीक आ जाने की खबर आ गई थी। फिर न जाने क्यों न आ सका? फिर कुछ महीनों बाद सुना कि किसी राजपूत नरवर के जागीरदार ने विश्वासघात करके उसे पकड़वा दिया।

आखिर वह दिन आ ही पहुंचा। ग्वालियर, देहली वगैरह से फौजें खाली होने के बाद राजाओं और अंग्रेजों की सेनाएँ चारों तरफ से इस इलाके पर बढ़ीं। लोगों ने डट कर सब ओर लोहा लिया, किन्तु आगरे के पास के जमींदार अंग्रेजों से मिल गए। इसलिए इस तरफ की अंग्रेजी फौजों का रास्ता साफ हो गया। साथ ही विजयोन्माद ने अंग्रेजों को पिशाच भी बना दिया। दोषी, निर्दोषी, स्त्री, बच्चे, रोगी, अपंग, सब एक ओर से मारे जाने लगे, किन्तु इससे विद्रोहियों में लड़कर मरने की भावना और दृढ़ हो गई। फलतः जब एक-एक झाड़ी के लिए झगड़ा होते देखा, तब उन्होंने (अंग्रेजों) लोगों को रियासतें और माफी देना शुरु कर दिया। फिर भी लोगों ने अन्त तक हथियार नहीं रक्खे। धौलपुर पर आने वाली कुछ फौजों में कुछ आदमी हमारे जिले के भी थे। उनकी सहायता से हम लोग निकल आए।

यहां आये तो पाया कि बहुत से गांव और जमीनें अंग्रेजों को मदद देने वालों को ही बांट दी गई थीं, परन्तु गांव सब उजड़े पड़े थे। इसलिए वे लोग भी भागे हुओं को वापस आबाद करने की पूरी कोशिश कर रहे थे। हम लोग भी बर्बाद तो हुए ही थे, निराश भी हो चुके थे। इसलिए फिर आबाद हो गये। फिर धीरे-धीरे सबके हथियार भी छीन लिए गए।

सम्भवतः मुझे और बहुत सी बातें जानने की उत्सुकता थी। मेरे बड़े ताऊ जी को बहुत सी बातें मालूम थीं। छोटे ताऊ जी ने मेरे लिए सिफारिश भी की परन्तु वे शपथ खा चुके थे और इसलिए कुछ भी बताने से इंकार कर दिया।

इसके बाद ही मेरी बहिन का ससुराल जाने का समय आया और मुझे उसके साथ जाना पड़ा। मेरी बहिन की ससुराल सिकन्दराबाद से लगभग तीन मील दूर निजामपुर नामक गांव में थी। मेरे बहनोई का भी पैतृक घर-बार छूट चुका था। कुछ ही पहले उन्होंने नौकरी से कुछ रुपया एकत्र कर किसी गरीब का मकान और लगभग पचास बीघा जमीन का खेत नीलामी में खरीद लिया था। अंग्रेजों ने आम जनता को विद्रोह का दण्ड यह भी दिया था कि भूमिकर बेहद बढ़ा दिया था। फलतः प्रायः जमींदारियां नीलाम होती रहती थीं। उस पर यहां की स्थिति हमारे उद्देश्य से सर्वथा उलटी थी। यद्यपि गांव में नहर होने से पैदावार अच्छी होती और अधिक भी होती, परन्तु शहर निकट होने और गांव में संगठन न होने से यहां बाहरी व्यापार का बोलबाला था। कोई स्थानीय उद्योग न थे और भूमिहीन लोगों के पास सस्ती नौकरी के सिवाय और कोई गुजर का जरिया न था।

दूसरी ओर गांव के कई आदमी सरकारी नौकर थे। वे गांव के लोगों को गँवार समझते थे और उनकी पंचायत का अनुशासन मानना तो दूर उनके पास जाना बैठना भी अपने लिए अपमानजनक समझते थे। उधर गांव के वृद्ध उन्हें 'गांव बिगाड़ा' और 'फिरंगियों के गुलाम' कहते थे। ये प्रायः गरीबों को नौकर रखकर उनसे अपने सौ काम कराते थे। गरीब आदमी अभी आपस में बँटे हुए थे। यद्यपि रीति रिवाज और त्यौहार हमारे प्रदेश के समान ही थे, परन्तु वह ऐक्य, समान व्यवस्था, अनुशासन और गांव तथा समाज की हिताहित की भावना देखने को भी न थी। मुझे भी अपनी अंग्रेज विरोधी भावना प्रकट करने का साहस नहीं होता था।

रियासती प्रजा के मुक्तिदाता

विजय सिंह पथिक को देशी राजाओं द्वारा शासित रियासती प्रजा का मुक्तिदाता कहा जाता है। कांग्रेस की नीति केवल ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ लड़ने और देशी रियासतों में हस्तक्षेप न करने की थी। रियासती प्रजा को कांग्रेस का सदस्य बनने का अधिकार भी न था। देशी रियासतों की प्रजा को यह खतरा दिखाई देता था कि कहीं ऐसा न हो कि ब्रिटिश भारत के लोग स्वशासन के अधिकार प्राप्त कर ब्रिटिश सरकार और देशी नरेशों से कोई ऐसा समझौता कर लें, जिससे देश के दो भाग हो जाएं और देशी राज्यों की जनता पराधीनता, विवशता और अत्याचार की चक्की में पिसने को छोड़ दी जाय। पथिक जी शुरु से ही इस पक्ष में थे कि कांग्रेस ब्रिटिश साम्राज्य के साथ-साथ देशी राजाओं से भी देश को मुक्त कराने का लक्ष्य निर्धारित करे और देशी रियासतों की प्रजा को कांग्रेस का सदस्य बनने का अधिकार दिया जाय। वे जानते थे कि यदि ऐसा न हुआ तो देशी राज्यों की जनता का भविष्य अंधकारमय हो जायेगा और वह सदैव के लिए राजाओं व सामंतों की पराधीन रह जायेगी। इसीलिए उन्होंने रियासती प्रजा की मुक्ति के लिए भगीरथ प्रयास किये और उसमें सफलता पाई।

1920 ई० में नागपुर कांग्रेस के अधिवेशन स्थल पर पथिक जी ने अपने साथी माणिक्यलाल वर्मा, केसरी सिंह बारहठ, रामनारायण चौधरी और हरिभाई किंकर के सहयोग से देशी राज्यों के अत्याचारों की एक प्रदर्शनी आयोजित की। यह अनोखी प्रदर्शनी पथिक जी की मौलिक सूझ थी। अंग्रेजी राज्य की छत्र छाया में राजशाही निरंकुश होकर कैसे भयानक और अमानुषिक अत्याचार प्रजा पर करती है, उसका सही चित्र पहली बार कांग्रेस के प्रतिनिधियों ने यहां देखा। यह प्रदर्शनी इतनी प्रभावशाली सिद्ध हुई कि देश के प्रत्येक कोने से आये कांग्रेस के प्रतिनिधियों का ध्यान देशी राज्यों की ओर खिंच गया। पथिक जी ने कांग्रेस के प्रतिनिधियों से अलग-अलग भेंट कर प्रयत्न किया कि कांग्रेस देशी राज्यों की स्वतंत्रता को भी अपने एजेंडे में शामिल कर ले। पथिक जी के प्रयत्न सफल हुए और ऐतिहासिक नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस ने ब्रिटिश भारत की संकुचित परिधि को छोड़कर देशी राज्यों सहित सम्पूर्ण भारत की आजादी प्राप्त करना अपना ध्येय घोषित किया। यह पथिक जी की बहुत बड़ी जीत तो थी ही, साथ ही आजादी के बाद निर्मित होने वाले भारत को एक नई दशा व दिशा देने वाला निर्णय भी था।

महात्मा गांधी से पथिक जी की भेंट

1920 ई० के कांग्रेस अधिवेशन में नागपुर पहुंचने पर किसानों की स्वाभाविक इच्छा महात्मा गांधी के दर्शनों की हुई। अस्तु किसान श्री माणिक्यलाल वर्मा के साथ महात्मा गांधी के शिविर में पहुंचे। महात्मा गांधी किसी मीटिंग में जा रहे थे। उन्होंने मोटर में पैर रक्खा ही था। भीड़ अधिक थी। उन तक पहुंचना कठिन था। श्री वर्मा ने जोर से चिल्ला कर कहा ''महात्माजी ब्रिजौलिया के किसान दर्शन करना चाहते हैं।'' तुरन्त महात्माजी मोटर से उतर आए और कहा ''बिजौलिया के किसान कहाँ हैं?'', कहते हुए वहां आ पहुंचे, जहां बिजौलिया के किसान थे। महात्माजी ने वर्माजी तथा अन्य बिजौलिया के किसानों को छाती से लगा लिया और कहा ''शाबाश बहादुरों'' और रात्रि को आने के लिए कहा। किसान गद्‌गद् हो गये।

रात्रि को आठ बजे पथिक जी के साथ वर्मा जी और किसान महात्माजी से मिलने गए। श्री जमनालाल बजाज, श्री रामनारायण चौधरी और श्री हरिभाई किंकर आदि भी मौजूद थे। पथिक जी ने किसानों की कष्ट गाथा सुनाई और जमीन को परती रखने के सत्याग्रह के बारे में महात्माजी को सारा ब्यौरा बताया। बिजौलिया आन्दोलन की बात करते हुए महात्माजी ने पथिक जी से कहा ''क्यों पथिकजी, कांग्रेस ने देश व्यापी असहयोग आन्दोलन छेड़ दिया है परन्तु मैने आपको बिजौलिया आन्दोलन का स्वयं संचालन करने का वचन पहले ही दे दिया था। कहिए कांग्रेस का असहयोग आन्दोलन चलाऊँ या पहले बिजौलिया सत्याग्रह के संचालन का वचन पूरा करुँ?'', पथिकजी महात्माजी के वचन सुनकर गद्‌गद् और आत्मविभोर हो गए। साहस और दृढ़ता के साथ बोले ''नहीं महात्माजी, आप देश की स्वतंत्रता के इस महान आन्दोलन को चलाइये। यह छोटे-मोटे काम हमारे लिए छोड़ दीजिए। जागीरदारों और राजे-रजवाड़ों से तो हम आपके अनुयायी ही निबट लेंगे। हमें आप आशीर्वाद दीजिए।'' तब महात्माजी ने बिजौलिया सत्याग्रह के लिए अपना आशीर्वाद दिया।

1921 ई० में कांग्रेस का अधिवेशन अहमदाबाद में हुआ। अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन में पथिक जी के नेतृत्व में बिजौलिया तथा बेगूं के 18 किसान प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। उसमें सर्व श्री माणिक्यलाल वर्मा, साधु सीताराम दास, श्री करोड़ीमल शर्मा, श्री भँवरलाल जी, प्रज्ञाचक्षु तथा प्रमुख किसान नेता में उमाजी खेड़ा के 85 वर्ष के दल्लाजी पटेल आदि प्रमुख थे। बिजौलिया के किसान प्रतिदिन प्रातःकाल प्रभातफेरी निकालते थे। उनमें पथिकजी, हरविलास शारदा, नरसिंहदास, रामनारायण चौधरी तथा अन्य लोग भी सम्मिलित होते थे।

अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में महात्मा गांधी ने बिजौलिया किसान

प्रतिनिधियों को 30 मिनट का समय बातचीत के लिए दिया था। साथ में एक ऐसे महानुभाव भी पहुंच गए जो पथिकजी की विचारधारा के विरोधी थे। उन्होंने पहुंचते ही आरम्भ में प्रश्न किया। ''बापूजी हमें देशी राज्यों में क्या करना चाहिए?'' महात्माजी ने उत्तर दिया- ''भाई कांग्रेस नीति में साफ है कि देशी राज्यों में हमें शिक्षा प्रचार, खादी प्रचार और मद्यनिषेध का प्रचार करना चाहिए।'' उक्त महानुभाव ने फिर प्रश्न किया कि ''आगे वहां तकलीफें हो तो कैसे मिटें?'' बापू ने कहा- ''भाई यह भी साफ है कि उन तकलीफों को सहन करो'' फिर उन्होंने प्रश्न किया कि यदि तकलीफें सहन करने की शक्ति न हो तो? बापू ने उत्तर दिया- ''यह भी साफ है हिजरत करो।''

इस प्रश्नोत्तर से बिजौलिया के प्रतिनिधियों को ऐसा प्रतीत हुआ कि वे महानुभाव बिजौलिया किसान आन्दोलन को अनुचित ठहरा कर उनके किए पर पानी फेर रहे हैं। तब पथिक जी बोले ''बापूजी यह तो हिजड़ों का काम है''। ''बापूजी ने भी तुरन्त ही उत्तर दिया मैं भी उन्हीं के लिए कहता हूँ''। पथिक जी बोले ''हम तो हिजड़े नहीं हैं।'' बापूजी ने कहा ''तुम जो मेवाड़ में कर चुके हो, वह आदर्श है।'' बिजौलिया के किसान प्रतिनिधि बिजौलिया आन्दोलन का महात्मा गांधी द्वारा समर्थन पाकर प्रसन्न हो गए और उक्त महानुभाव जो अपने को कट्टर गांधीवादी कहते थे, निरुत्तर तथा हतप्रभ हो, चुप हो गए।

पथिकजी ने महात्मा गांधी से फिर प्रार्थना की कि बापूजी बिजौलिया के 29 किसान प्रतिनिधि आये हैं, इनको बिजौलिया के लिए आप क्या संदेश देते हैं। महात्माजी ने कहा- ''मैं बिजौलिया वालों को क्या संदेश दूं? बिजौलिया के प्रतिनिधि तो मुझे संदेश देने आये हैं कि बापू तूने जो सत्याग्रह छेड़ा वह असफल रहा, हम लोग अपने आन्दोलन को सफल करने आये हैं।'' पथिकजी तथा बिजौलिया के उनके साथी बापू के वचन सुन कर गद्‌गद्‌ हो गए। उन्हें विश्वबंधु बापू का आशीर्वाद मिल गया था।

स्रोत : बिजौलिया किसान आन्दोलन का इतिहास

जानकी देवी पथिक के दो संस्मरण

(1)

सन् 1954 मई का महीना था। हर साल की भाँति छुट्टियां होते ही मैं पूज्य पतिदेव के पास अजमेर गई। वहाँ उनको लू लगी थी। सबेरे 8 बजे की गाड़ी से मैं व बहनोई श्री फूलसिंह पहुँचे। डॉक्टर राजपाल जी उन्हें देख रहे थे। श्री पृथ्वीसिंह जी मेहता का परिवार बड़ी संलग्नता से सेवा सुश्रवा कर रहा था। मैंने जाते ही पूछा कि आपने मुझे पत्र क्यों नहीं दिया? कहने लगे कि तुम्हें इसलिए पत्र नहीं दिया कि तुम बीमारी का हाल सुनकर घबरा जातीं और मुझे तो यह विश्वास था कि तुम आ ही जाओगी, तो तुम आ ही गयीं।

अजमेर में पहले कई बार बीमार हुए थे। तब डॉक्टर अम्बालाल शर्मा ही इलाज किया करते थे और अच्छा भी कर लेते थे। इसी विचार से मैंने कहा कि आपने डॉक्टर साहब को क्यों नहीं बुलाया तो कहने लगे कि डॉक्टर साहब मिले नहीं। उसी समय मैने श्री फूलसिंह को उनके पास भेजा। वह अपने पास से ही दवा इन्जेक्शन लेकर आये। उसी समय इन्जेक्शन दिया और दवा दी। उस दिन अच्छे रहे। रात को भी थोड़ी सी नींद आयी। दिन में मिलने वाले आते तो जैसा कि उनका हंसी करने का स्वभाव था, सबसे हंस-हंस कर बातें करते। सब के मना करने पर भी मानते नहीं थे। इन्हीं दिनों श्री शोभालाल जी गुप्ता की धर्मपत्नी विजया बहिन अजमेर आई हुईं थीं। वह मिलने जातीं तो अपने स्वभाव के अनुसार बड़ी जोर से हंसते।

बीमारी की हालत में भी उन्हें देश के काम की बड़ी धुन थी। डॉक्टर आते तो कहने लगते कि डॉक्टर मुझे, शीघ्र अच्छा करो। नोटिस छप गये हैं, अखबार निकालना है।

अपनी बीमारी की चिन्ता न करके हम लोगों की चिन्ता अधिक करते थे। बार-बार हम लोगों से कहते कि तुम लोग रात के जगे हो, खाना खाकर सो जाओ। बार-बार आग्रह करने पर हम सब थोड़ी देर के लिए जमीन पर लेट गये। मैंने अपने भतीजे अभय को पास बिठाया। उसी बीच में पेशाब करने के लिए उठे और पास ही गुसलखाने में गये। उनके पीछे ही फूलसिंह भी उठे और उन्हें पकड़ कर बिस्तर पर लिटा दिया। उसी समय से जिह्वा कुछ-कुछ लड़खड़ाने लगी। उस रात नींद भी नहीं आयी। वही पिछली बातें याद करते रहे हैं। कभी कहते थे कि स्टेशन पर कुछ आदमियों का इन्तजाम करना है। हथियार वहाँ रखे हैं। ऐसा न हो कि ट्रेन छूट जाये या हथियारों का किसी को पता लग जाये। कभी माला फेरने लग जाते।

तीन-चार साल पहले से पूजा आदि भी करने लगे थे। चैत्र व आश्विन में पूरे

नौ दुर्गा के दिनों में उपवास रखते थे और रात्रि को हवन करके दूध या साबूदाना लेते थे।

वह रात तो उसी प्रकार निकली। सबेरा होते ही डॉक्टर साहब आए और उन्होंने इन्जेक्शन दिया व दवाएं पिलाईं किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। हालत गिरती ही गयी। दिन के 12 बजे तक अच्छी तरह से बातें करते रहे। 12 के बाद जीभ अधिक लड़खड़ा गयी और 2 बजे निर्जला एकादशी को शान्त भाव से एकदम बिना किसी परेशानी के ऐसे आंखें बन्द कर ली मानो चिरनिद्रा में सो रहे हों।

उस समय मेरी यह लगन और लालसा थी कि किसी तरह अच्छे हो जायें और शरीर को देखते हुए यह विश्वास भी नहीं होता था कि वे इतनी जल्दी मुझ अभागिनी को छोड़कर चल देंगे। भविष्य के लिए मैं कुछ भी नहीं पूछ सकी कि मुझे क्या करना चाहिए। इसके बाद कांग्रेस कमेटी के मन्त्री श्री कन्हैयालाल व जियालालजी आदि ने उनकी शान के अनुरूप ही दाह संस्कार करा दिया।

इसके बाद मुझे कोई सहारा नहीं दिखा। मैं हताश हो रही थी कि 15 या 20 पुस्तकें हस्तलिखित हैं। इनको कैसे छपवा सकूंगी। इनके कुछ मित्रों ने कहा कि सारा साहित्य हमें दे दो, हम प्रकाशित करा देंगे, किन्तु यह बात मुझे जंची नहीं।

पतिदेव के खास-खास मित्रों ने मुझे अजमेर में रखने की काफी कोशिश की। इनमें प्रमुख हैं डॉक्टर अम्बालाल जी, कन्हैय्रा लाल आर्य जी, चौ शिवनारायण सिंह जी वकील आदि। मेरी भी यही इच्छा थी कि मैं अजमेर में रहूं, किन्तु अजमेर का निवास मेरे भाग्य में बदा न था। अजमेर सरकार से इसलिए मुझे कोई सहयोग न मिला।

उस समय उनके पुराने मित्र पूठोली और ओछाड़ी ठाकुर साहब ने मुझे काफी हिम्मत बंधाई और आज भी बंधा रहे हैं। दोनों ने कहा कि तुम अपनी इच्छानुसार पूठोली और ओछाड़ी कहीं भी रह सकती हो और वहाँ धीरे-धीरे साहित्य भी प्रकाशित करवाते रहेंगे।

उस समय बिजौलिया में कुछ सामान रखा था और मकान भी खाली करना था। सामान लेने व मकान खाली करने मैं बिजौलिया गई। रास्तें में कोटे ठहरी तो वहाँ श्री मा० सा० शम्भूदयालजी सक्सेना मिले। उन्होंने मुझे काफी सान्त्वना दी और कहा कि कुछ साहित्य मेरे पास उनका रखा है और भी जो कुछ होगा, उसे एकदम नही तो धीरे-धीरे करके सारा प्रकाशित करवा देंगे। आप चिन्ता मत करो।

इसके बाद मैं फिर अजमेर गई और वहाँ चार माह तक परेशान होती रही किन्तु साहित्य प्रकाशन का कोई साधन न दिखा तो हारकर मथुरा ही आना पड़ा। मथुरा में आकर मैं एकदम पागल की तरह हो गई थी। किसी कार्य को करने की इच्छा न थी। यहाँ चम्पा अग्रवाल कॉलेज के वायस प्रिंसिपल श्री जगदीश शरणजी व श्रवणलालजी वकील व श्री माता प्रसादजी आदि ने मुझे समझा बुझा कर कार्य में लगाया। यहाँ अपना वही पुराना अध्यापन कार्य करने लगी।

इसी बीच में हिन्दुस्तान के यशस्वी सम्पादक श्री शोभालालजी गुप्त ने जो मेरे पतिदेव के पुराने साथी व शिष्य हैं, बिना मेरी जानकारी के ही राजस्थान सरकार से

साहित्य प्रकाशन के लिए लिखा-पढ़ी की और एक पथिक साहित्य प्रकाशन समिति बनाई, जिसके सदस्य हैं सर्व श्री गुप्ता जी, ब़ाबाजी नरसिंहदासजी, शम्भूदयालजी सक्सेना, कनक मधुकर और यह सेविका।

श्री गुप्तजी के परिश्रम से ही राजस्थान के मुख्य मंत्री श्री मोहनलालजी सुखाड़िया ने पांच हजार साहित्य प्रकाशन के लिये और दो हजार मेरे निज के निर्वाह के लिए राज्य से स्वीकृत किये। इसमें से दो हजार मेरे और ढ़ाई हजार साहित्य प्रकाशन के लिए तो पिछले साल जून में मिल गये थे औंर ढाई हजार इस प्रकाशन का हिसाब देने के बाद मिलेंगे।

ढाई हजार जो मिले हैं, उनमें से अब तक चार पुस्तकों की पाण्डुलिपि हुई है और दो पुस्तकें 'पथिक प्रमोद' और 'पथिक विनोद' छप कर तैयार हो रही हैं। इनका हिसाब देने पर अगली किश्त में 'प्रहलाद विजय' जो एक बड़ा ग्रन्थ है, छापने की आशा है।

मैं राजस्थान सरकार का और इन भाइयों की, जिनके नाम ऊपर आयें हैं, आजन्म ऋणी रहूंगी। इन सबके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रगट करती हूँ कि जब मैं बिलकुल दुःख में डूबी हुई थी औंर कोई भी सहारा नहीं दिखायी पड़ता था, तब इन सबने तन, मन, धन से सहायता करके पूज्य पति के साहित्य प्रकाशन की मेरी चिरसाध को पूरा किया। मैं कृतज्ञ हूँ भूमिका लेखक गुप्त जी की, 'पुस्तक की प्रेस कॉपी तैयार करने वाले हरिमोहनजी एम०ए० प्रधान की, मुद्रक श्री उमेद प्रेस कोटा की और भाई सक्सेना जी की, जिनकी देख-रेख में यह सारा प्रकाशन कार्य आदि से अन्त तक हुआ है। मैं सब भाइयों से यही आशा करती हूँ कि अभी तक जिस सहृदयता से सहायता दी है, उसी प्रकार आगे भी शेष पुस्तकें प्रकाशित करने में मुझे सहयोग प्रदान कर कृतार्थ करेंगे।

दूसरी प्रार्थना मेरी यह है कि ये जो पुस्तकें प्रकाशित हो रहीं हैं, उनके लिए मेरे पास कोई स्थान नहीं है। अतः मैं सोचती हूँ कि राजस्थान में कहीं भी एक छोटा सा श्री विजय सिंह पथिक के नाम से पुस्तकालय बन जाय तो अच्छा है, जिसमें सारा साहित्य रखा जाय। मुझे आशा है कि इस कार्य में भी मेरे भाई पूर्ण सहयोग देकर मेरी आत्मा और उस स्वर्गीय आत्मा को शान्ति देंगे।

मथुरा की म्युनिसिपेल्टी के चेयरमैन महोदय, सम्माननीय सदस्यों एवं कामरेड श्री हरप्रसाद तथा श्री शिवशंकर उपाध्याय आदि को भी हृदय से धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने मथुरा में मेरे निवास स्थान की समीप की सड़कों का पथिक मार्ग नाम देकर अपने अतिथि के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया।

– पथिक जी द्वारा लिखित कहानी संग्रह 'पथिक प्रमोद' में प्रकाशित

(2)

स्व० पति देव (श्री पथिक जी) के सहयोगी एवं घनिष्ठ साथियों के प्रयास से राजस्थान सरकार के अनुदान से पथिक जी द्वारा लिखित कुछ साहित्य प्रकाशित होकर पाठकों के हाथ में पहुंच गया, किन्तु अभी उनका बहुत सारा साहित्य अप्रकाशित पड़ा है।

उसके लिए मन में बार-बार एक टीस सी उठती रहती है, रात में जब नींद खुल जाती है, तो, मन में यही अन्तर्द्वन्द रहता है कि जिसने जीवन भर देश सेवा करने का व्रत लिया, अनेक प्रकार के दुःख उठाये, अनेक प्रकार की यातनाऐं सहीं, यहाँ तक कि भूख प्यास की भी परवाह नहीं की और दिन में कोई देख न ले, टट्टी-पेशाब पर भी काबू किया। अन्त में जेल जाने के बाद भी देश की चिन्ताएं बनी रहीं। वहाँ भी खाली नहीं बैठे। वहाँ भी अनेक प्रकार का साहित्य रचते रहे, किन्तु जेल जीवन की अवधि पूरी करके बाहर आने के पश्चात् उनके साहित्य को सरकार ने बन्दी ही रखा।

स्वतंत्रता के बाद कोशिश करने पर साहित्य मिला किन्तु पैसे के अभाव में छपा न सके और ईश्वर ने उन्हें समय के पहले ही उठा लिया। मैं तो अन्धकार में पड़ी ही थी कि क्या करुं? श्री पथिक जी के पुराने साथी श्री शोभालाल जी गुप्त के प्रयत्नों से राजस्थान सरकार ने अनुदान दिया और तीन पुस्तकें पथिक विनोद (कहानी संग्रह), पथिक प्रमोद (कविता संग्रह) और 'प्रहलाद विजय' (खण्ड काव्य) प्रकाशित हुए। शेष पुस्तकों के बारे में मैं सोचती रही।

एक दिन श्री फूलसिंह जी व दीक्षित जी ने यह सुझाव दिया कि श्री पथिक जी गुर्जर जाति में जन्में थे और राजस्थान उनका कार्य क्षेत्र रहा है। वहाँ के गुर्जर अच्छे सम्पन्न हैं और स्व० पथिक जी के भक्त भी हैं; अतः एक अपील निकाली जाय। उनके सुझाव से एक अपील निकाली। उसमें कुछ सफलता मिली। पथिक जी के भक्तों के पास अपील भेजी गई, लगभग 250 रुपये की पुस्तकें बिकीं। उन रुपयों व कुछ पुस्तकालय की दुकानों के किराए से श्री पथिक जी का लिखा 'सुखिया-सुरेश' नामक यह नाटक छपने दिया।

यह नाटक दो खण्डों में है। इस नाटक में उन्होंने उस समय के प्रशासन एवं वातावरण का अहसास करवाने का प्रयास किया है। गोरे शासन में शासकों द्वारा एक भी भारतीय को कोई भी पद देने के पश्चात दूसरे भारतीयों को कष्ट देने का हुक्म कैसे दिया जाता था, शासक कितनी मनमानी करते थे, उनके यहाँ पर चाटुकारों की भी कमी नहीं होती थी, सम्बंधी विवरण है। इस नाटक में भी 'चटनी प्रसाद' हैं जो महाराज की हाँ में हाँ मिलाने को ही अपना अहोभाग्य समझते थे। उस समय के उच्चाधिकारी किस प्रकार दुर्बलों को अपना शिकार बनाते थे, इन सब प्रकार की परिस्थितियों को उन्होंने इस नाटक में प्रस्तुत किया है।

इस नाटक का पहला खण्ड तो छप कर तैयार हो गया। दूसरा खण्ड शेष रहा तो मैं बीमार पड़ गयी और लम्बी बीमारी के कारण मेरी बीमारी में अधिक खर्च होता रहा। पुस्तक की तरफ ध्यान न दे सकी और पुस्तक अधूरी ही रही। कुछ दिन बाद श्री पथिक जी के पुराने साथी श्री राम नारायण जी चौधरी ने अपनी निजी सम्पत्ति को कई भागों में विभाजित कर कई संस्थाओं को दिया। पथिक जी के जन्म स्थान गुठावली कलां, बुलन्दशहर के 5000/- रुपये दिये, जो उनकी स्मृति को बनाये रखने हेतु किसी भी कार्य में खर्च किये जा सकते हैं। इस प्रकार की वसीयत मेरे पास आई। मैंने अपनी बीमारी का

हाल लिख कर पुस्तक बिक्रीमें सहयोग देने की अपील की। श्री चौधरी जी ने तीन सौ का चेक भी भेज दिया।

इसके बाद पथिक जी के पुराने साथी श्री शंकर सहाय जी सक्सेना ने 111 रुपये सहायतार्थ दिये तथा कोटा के स्व० श्री दुर्गादास जी कविराम की धर्मपत्नी श्रीमती उमादेवी जी ने 100 रुपये दिये। इस तरह पुराने साथियों के सहयोग से पुस्तक तैयार होकर पाठकों के हाथों में आयीं। इस तरह सब सहयोगी भाई बधाई के पात्र हैं।

अभी पथिक जी का छपा हुआ साहित्य 1 पथिक प्रमोद (कहानी संग्रह), 2. पथिक विनोद (कविता संग्रह) और 3. प्रहलाद विजय (खण्ड काव्य) आदि की पांच-पांच सौ कॉपियां बची हुई हैं। पाठकों से सविनय अनुरोध है कि नये व पुराने साहित्य को शीघ्रातिशीघ्र खरीदें, जिससे कि पथिक जी का अप्रकाशित साहित्य भी प्रकाश में आ सके।

– पथिक जी द्वारा लिखित नाटक 'सुखिया-सुरेश' की भूमिका

पथिक जी द्वारा लिखित तीन गीत
किसानों का झंडा

लहरावेगो, लहरावेगो, झंडो यो करसाणां को।
घर महलां पर, मींदारापै, कोट किलांपर भंडारापै।।
गांव गलीमें बाजारांपै, पुर द्वारांपै, दीवारांपै।
यो हल मंडित ध्वज निशान है, करसां का अरमानां को ।।लह० ।।
घणा सो चुक्या जाग उठ्या हाँ, आलस निद्रा त्याग उठ्या हाँ।
धणी सह चुक्या अब न सहांगा, लेकर गांव स्वराज्य रहांगा।
देख लिया मंया का लक्खण, स्वार्थ धरम धनवानां को ।।लह० ।।
घड़ी घड़ी धोको दे दे कर, वोट किसानां का-ले ले कर।
म्हां पर ही थां छुरी चलाई, सेवा बढ़िया थां की भाई।
अब न चलेगो म्हां पर जादू, थां शहरी शैतानां को ।।लह० ।।
गांधीजी की छाप लगाकर, चरखा को झंडो फहरा कर।
खूब दुकान चलाई थांने, लूट प्रजा सब खाई थांने।
अब यो ब्लैक नहीं चलबा को, धोखा की दुकान्यां को ।।लह० ।।
अब न कणी की साख भरांगा, म्हा को परबंध म्हई करांगा।
पंच बोर्ड कौंसिल सब ही में, वोट किसानों ने म्हा दांगा।
अब न मिलेगो ठेको थांने, जंगलात को खान्यां को ।।लह० ।।
छूत अछूत किसान बलाई, सब मिल एकट कर लो भाई।
सब मिल कर पंचायत थापो, एकट सो सारो दुःख काटो।
मत गांवाँ में जमबा दो अब, पंजो फिर श्रीमानां को ।।लह० ।।
गृह उद्योग चलवांगा म्हें, पक्को माल बनावांगा म्हें।
घर घर अलख जगावांगा म्हें, सबने ज्ञान सिखावांगा म्हें।
बली बनांगा क्यूंकि जगत में, सब कुछ है बलवानां को ।।लह० ।।
लहरावेगो, लहरावेगो, झंडो यो करसाणां को।

झंडा गीत

प्राण मित्रों भले ही गंवाना, पर न झण्डा ये नीचे झुकाना।।
तीन रंगा है झण्डा हमारा, बीच चरखा चमकता सितारा।।
शान है ये ही इज्जत हमारी, सिर झुकाती इसे हिन्द सारी।।
इस पै सब कुछ खुशी से चढ़ाना।
पर न झण्डा ये नीचे झुकाना।।
ये है आजादपन की निशानी, इसके पीछे हैं लाखों कहानी।।
जिन्दा दिल ही हैं इसको उठाते, मर्द हैं इस पै सर तक चढ़ाते।।
तुम भी सारी मुसीबत उठाना।
पर न झण्डा ये नीचे झुकाना।।
रे! क्या भूले हो जलियान वाला, या वो डायर का इतिहास काला
गोलियों की लगी जब झड़ी थी, नींव आजादी की तब पड़ी थी।।
याद हो गर वो खूं में नहाना।
तो न झण्डा ये नीचे झुकाना।।
उसने तो था न क्या जुल्म ढाया, पेट के बल पै हमको चलाया।
कोसों बच्चों को पैदल भगाया, माओं-बहनों को घर-घर रुलाया।।
याद है तुम्हे जो वह फसाना।
तो न झण्डा ये नीचे झुकाना।।
और अब भी न क्या हो रहा है, कौन सुख की नींद में सो रहा है।
लोग पाते न भर पेट खाना, सच्च बोलो तो है जेलखाना।।
है इसी से छिड़ा यह तराना।
होना आजाद या मिट ही जाना।।
पर यह करलो अहद मर मिटेंगे, पर न इस वृत से तिलभर हटेंगे
कुछ हो यह मुल्क आज़ाद होगा, उजड़ा गुलशन ये आबाद होगा।
गायेंगे आज सब ये गाना।
हिन्द होगा, न अब जेल ख़ाना।।
झण्डा यह हर किले पर चढ़ेगा, इसका दल रोज दूना बढ़ेगा।।
तीरो तलवार बेकार होंगे, सोने वाले भी बेदार होंगे।।
सब कहेंगे कि सर है कटाना।
पर न झण्डा ये नीचे झुकाना।।
शांत हथियार होंगे हमारे, पर वे तोड़ेंगे अरि के दुधारे।।

पर भला हो जो अंग्रेज जागे, लोभ हिन्दी हुकुमत का त्यागे।।
वरना बदला है क्या यह ठिकाना।
उनसे बदलेगा सारा जमाना।।
हे प्रभो! शक्ति दो वीर हों हम, टेक रक्खेंगे सर्वस्व खो हम।।
हम ही क्या, कह उठे सब जमाना, दूध देखो न माँ का लजाना।।
प्राण अपने भले ही गंवाना।
पर न झण्डा ये नीचे झुकाना।।

(1930 के कांग्रेस अधिवेशन में पथिक जी द्वारा रचित यह झंडा अभिवादन गीत गाया गया था। उसके बाद यह समस्त देश में कांग्रेस के कार्यक्रमों में गाया जाने लगा था।)

ऊपरमाल

धन्य धन्य हे ऊपरमाल।
अजब हो गया तेरा हाल ।।

बहुत दिनों से तू सोती थी, सिसक-सिसक कर तू रोती थी।
कैसा सुख, कैसा दुःख, कैसा चोर ठगों का जाल।
जाता कहां कमाया माल ।। धन्य० ।। 1 ।।

आंख खोल कर अब जागी हैं, धर्म-कर्म में कब लागी हैं।
काम निहार, रह तैयार, जननी! निज शिर केश सम्हाल।
चल दे आज अनोखी चाल ।। धन्य० ।। 2 ।।

सुन कर तेरी भारी हांक, चहुं दिशि लोग रहे हैं झांक।
तेरे पूत, हैं मजबूत, सत्याग्रह की लेकर ढाल।
दूर किया परवशता जाल ।। धन्य० ।। 3 ।।

दुनिया को बल दिखला देना, सत पर मरना सिखला देना।
करना काम, होगा नाम, होगा फिर से उन्नत भाल।
रक्षक होंगे श्रीगोपाल ।। धन्य० ।। 4 ।।

पीड़ितों का पंछीड़ा

यह माणिक्यलाल वर्मा जी का प्रसिद्ध ऐतिहासिक गीत है जो उस समय लिखा गया था, जब पथिकजी बिजौलिया के किसानों को संगठित कर रहे थे। इसमें पथिक जी को देवता और किसानों को भगवान बताया गया है। हजारों किसानों में जब वर्मा जी ने उसे गाया तो किसान आत्मविभोर हो गये। आगे चलकर यह गीत बहुत प्रिय और प्रसिद्ध हुआ। ऊपरमाल के किसान इसे प्रत्येक सभा में गाते थे-

मर्दां औरे काली तो भादूड़ारी रातां सोवे छा।
तन का कपड़ा भी खोवे छा, हांय पड़्या पड़्या थे रोवे छा।
आंसू सूं डीलड़ो धोवे छा, मर्दां औरे काली तो..........।
ढाडा थाने जाण सिपाही कूटे छा, धन माल कमाई लूटे छा,
दूजां के खूंटे-खूंटे कूदे छा, आपस में भाई फूटै छा,
मर्दां औरे काली तो भादूडारी रातां सोवे छा।
बेगारां का जूता थां के सिर पर लागे छा।
पहरा में तिनका जागे छा, थे देख सिपाही भागे छा।
मर्दां ओरे काली तो भादूडारी रातां सोवे छा।
सहणा को वो खाट तोड़बो उठयो छा।
लोहू को गुटको छूट्यो छा, लुण्यां की हांडी फूट्यो छा।
यो नार आंक सूं खूट्यो छा।
मर्दां ओरे काली तो भादूडारी रातां सोवे छा।
पड़क दड़क रूपयां को छन-छन निठगी छी।
कठती बत्ती सब कटगी छी।
घिसा और गाडयां मिटगी छी, परणा की कीमत घटगी छी।
मर्दां ओरे काली तो भादूडारी रातां सोवे छा।
दौड़ दौड़ कर घूट्यो नजराणो देवै छा।
छानै छानै रिश्वत लेवै छा।
वो पागल उल्लू कहवै छा, बल्दां ज्यूं रात दिन बहवै छा।
मर्दां ओरे काली तो भादूड़ारी रातां सोवे छा।
एकठ थां कै देख सभा ने रोकै छा।
बन्दे की बोली टोकै छा, झूठां भूतां ने धोकै छा।
बिन बादल मोर्‍या कूकै छा।
मर्दां ओरे काली तो भादूड़ारी रातां सोवे छा।

थां का बालक हाथ कंवारा रैवै छा।
पण नूत बराड़ौ देवै छा, घर भूखा रहवी सहवै छा।
थे हाय निसासी लेवै छा।
मर्दां ओरे काली तो भादूड़ारी रातां सोवे छा।
हाकम हाकम करता हास्या छा।
कूंतां में पूरा नास्या छा, घर में नहीं बचता खास्या छा।
सोमल खा मरबो धारया छा,
मर्दां ओरे काली तो भादूडारी रातां सोवे छा।
सुणकर अर्जी एक देवता आयो छै।
जीको पैंतो नहीं पायो छै, बूंटी सत्याग्रह लायो छै।
सब लोगां कै मन भायो छै।
मर्दां ओरे काली तो भादूड़ारी रातां सोवे छै।
देखो आंख्या खोल सूरजो उग्यो छै।
दूजो काकोजी पूग्यो छै।
पापीड़ो पडग्यौ लूग्यो छै, बीज धर्म को बूग्यो छै।
मर्दां ओरे काली तो भादूड़ारी रातां सोवे छा।
कांटा की यह बाड़ खेत नै खागी छै।
या भूख ज्वाला लागी छै, लुगायां होगी नागीं छै।
या मौत सामने आगी छै।
मर्दां ओरे काली तो भादूड़ारी रातां सोवे छा।
चेतो झटपट नहीं तो पापणी खा जासी।
तैय्यार रसोई पाजासी, नहीं मिलसी टुकड़ो भी बासी।
सब डील डाकणी छा जासी।
मर्दां ओरे काली तो भादूड़ारी रातां सोवे छा।
थां की हिम्मत अन्यायां के खटकै छै।
मन अगल बगल में भटके छै।
थाने घबराब्रा सटकै छै।
सत देख्यां पाछे अटकै छै।
मर्दां ओरे काली तो भादूड़ारी रातां सोवे छा।
थां को सत को काम कालजे सालै छै।
अब पसली पसली हाले छै, वै झूठ अड़ंगा डाले छै।
पण अपनी चालां चाले छै।
मर्दां ओरे काली तो भादूड़ारी रातां सोवे छा।
वै भी मिलकर एकठ करवा लाग्या छै।
अब अठी उठी ने भाग्या छै, रूपया करसां का खाग्या छै।

भांण्डा खाली अब बाग्या छै।
मर्दां ओरे काली तो भादूड़ारी रातां सोवे छा।
देखी थांकी चोटी हाकिम पकड़ैगा, दोई हाथ बांध वै जकड़ैगा।
तब रूपया थांका निकलैगा, मजबूती सूं पाछा सकड़ैगा।
मर्दां ओरे काली तो भादूड़ारी रातां सोवे छा।
थांके ऊपर घटा विपत्ति की आवेगी।
काली बादलियां छावैगी।
फिर बिजली चमकावैगी, आंधी थाने डरपावैगी।
मर्दां ओरे काली तो भादूडारी रातां सोवे छा।
रीछ बांदरा नार स्याल सब झूमैगा।
काली नागण भी फूंकैगा, फिर चोर लुटेरो लूटैगा, कपड़ा लेबाने घूमैगा।
मर्दां ओरे काली तो भादूडारी रातां सोवे छा।
मर्दां ओरे काल कोठरी भीतर थाने खड़कैगा।
बन्दूक्यां न्याली अड़कैगा, तोपों की जोडयां धड़कैगा।
वे सपना में भी भड़कैगा,
मर्दां ओरे काली तो भादूडारी रातां सोवे छा।
हाथ जोड़बो छोड़ आख्यां-राती करलो, ई खुशामद ने दूरी धर लो,
झूठो मत पीवो थां जड़दो, यो मर्द नसो डील में भरदो।
मर्दां ओरे काली तो भादूडारी रातां सोवे छा।
मर्दां ओरे मरती मर जास्यो पर लागत मत दींज्यो।
घणी करे तो हासिल भी मत दीज्यो, बेड़ी के दुःख थे पालीज्यो।
अन्नदाता कहबो छोड़ दो यो मत खिज्यो।
मर्दां ओरे काली तो भादूडारी रातां सोवे छा।
मर्दां ओरे यदि ओरे करज्यो ललकारी
बैरी अन्त में धूजैगा, खरला में भी जस गूंजैगा।
हो रोग अन्यायी सूजैगा, पग पाछा थांका पूजैगा।
मर्दां ओरे काली तो भादूडारी रातां सोवे छा।

अमर केसरी राजस्थान

आर्य-भूमि के आर्य-पुत्र तुम, अमर केसरी राजस्थान।
कैसे कर दूं शब्दों में, वीर ! तुम्हारा गौरव-गान।।
परातंत्र की कुटिल बेड़ियां, बन करके विषधर विकराल।
पड़ी हुई थीं आर्य-भूमि के, पद-कमलों में हा ! उस काल।।
हाय ! अश्रु-मय, मृग-नयनों से, लिए हृदय में व्यथा अपार।
तोड़ श्रंखला, पावन-मुक्ति, मांग रही थी हाथ पसार।।
प्रकट हुए उस काल वीर तुम, देने को वन्दिनि को त्राण।
महाक्रांति का दे संदेश, भर देने को अभिनव प्राण।।
कूद पड़े तुम क्रांति-समर में, सहा कुशासक का भी रोष।
किन्तु वीर ! तुम डिगे न पथ से, करते रहे मुक्ति का घोष।।
तुम जैसे अगणित वीरों का, सफल हुआ अन्ततः बलिदान।
छली, बलि निष्ठुर गोरों ने, किया आर्य-भू से प्रस्थान।।
देव ! तुम्हारे दिव्य-त्याग की, समता वीर करेगा कौन।
तन-मन-धन सब किया समर्पित, किन्तु रहे फिर भी तुम मौन।।
जन-जन की जागृति के प्रहरी, राज-भूमि के उन्नायक।
निर्बलों के सबल, अभय नेता, अमर-क्रांति के हे गायक।।
श्री विजय सिंह पथिक तुम्हारी, है स्मृति जग-जन-मन में।
बोल रहा है त्याग तुम्हारा, राजस्थान के कन-कन में।।
धन्य वीर तुम; धन्य तुम्हारे त्याग, कार्य, संदेश महान।
करें वन्दना कोटि-कोटि जन, अमर केसरी राजस्थान।।

– डॉ० विष्णु पंकज

पथिक जी के बारे में कुछ महत्वपूर्ण लोगों की राय

"पथिक काम करने वाला है, दूसरे सब बातूनी हैं। पथिक एक सिपाही आदमी है, बहादुर है, जोशीला और तेज मिजाज है, लेकिन जिद्दी है।"[21]

– महात्मा गांधी

"यह वह प्रदेश है, जहां बिजौलिया का विजयी नेता, सरदार पटेल की टक्कर का योद्धा वीर विजय सिंह पथिक अपनों और बेगानों से उपेक्षित होकर निर्वासित सा मथुरा, मन्दसौर और मेवाड़ में कृषि-जीवन बिताने को विवश किया जा सकता है।"[22]

– कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
(जाने माने पत्रकार)

"पथिक जी केवल नेता, वीर, त्यागी, तेजस्वी, क्रान्तिकारी ही नहीं थे, वे सुकवि, गीतकार, सशक्त लेखक, सफल पत्रकार और राजस्थानी साहित्य के मर्मज्ञ भी थे।"[23]

– श्री सूर्यनारायण
प्रसिद्ध साहित्यकार

"पथिक जी वास्तव में एक महान साहित्यकार, लेखक, कवि, इतिहास शोधक और राजनीतिज्ञ थे। राजनैतिक संघर्ष ने उनके गंभीर पांडित्य, साहित्यकार और कवि को छिपा रखा था। भारत में बहुत कम राजनैतिक नेता उनकी पंक्ति में रखे जा सकते हैं जो इतनी बहुमुखी प्रतिभा के धनीं हों।"[24]

– शंकर सहाय सक्सेना
(पथिक जी की जीवनी के लेखक)

"बिजौलिया किसान आंदोलन की क्रान्तिकारी युद्ध-प्रणाली और उसके दूरगामी क्रान्तिकारी प्रभाव को भली प्रकार समझने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हम उसके सूत्रधार श्री विजय सिंह पथिक के व्यक्तित्व को जान लें, जिन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा सत्याग्रह के आविर्भाव के पूर्व ही बिजौलिया के किसानों को ऐसा अद्भुत और सशक्त संगठन दिया, जिसकी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी प्रशंसा की थी।"[25]

– डॉ० पदमजा शर्मा
इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

"पथिक जी राजस्थान के ऐसे सर्वप्रथम महाप्राण व्यक्ति थे, जिन्होंने रियासतों में सामंती ताकतों से टक्कर लेकर उन्हें पहली बार जनशक्ति का बोध कराया था। दबी हुई रियासती जनता में न्याय के लिए राजा, जागीरदार और शासन के अत्याचारों के विरुद्ध साहस व निर्भीकता से लोहा लेने की भावनाऐं जागृत कीं। लोकधर्म व लोकसेवा के जो आदर्श अपने त्याग व कुर्बानियों से उन्होने स्थापित किये, उनका इतिहास में कोई मुकाबला नहीं है।"

- सुमनेश जोशी
राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, पृ० 21

"पथिक जी की कार्यप्रणाली में क्रान्तिकारियों का साहस, लोकमान्य तिलक की कूटनीति व गांधीजी के सत्याग्रह का सामंजस्य था। उनके नेतृत्व में बिजौलिया के किसानों ने जिस संगठन, एकता और बलिदान की भावना का परिचय दिया, उसकी मिसाल भारत में आधुनिक इतिहास में बारडोली को छोड़कर अन्यत्र शायद ही कहीं मिलेगी।"

- रामनारायण चौधरी
बीसवीं सदी का राजस्थान, पृ० 49

"पथिक जी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सात वर्ष जीवित रहे और यह समय उन्हें घोर आर्थिक तंगी व उपेक्षा में गुजारना पड़ा। सत्ता की आपाधापी में बिजौलिया आन्दोलन के यशस्वी प्रणेता पथिक जी को एक तरफ ढकेल दिया गया। राजस्थान के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाले इस नरपुंगव के साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार किया गया।"

-डॉ० कन्हैयालाल राजपुरोहित
'स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहुतियाँ', पृ० 219

"पथिक जी का जीवन कार्यशीलता का एक अनुपम उदाहरण था। वह एक क्षण के लिए भी खाली नहीं बैठते थे। कुछ न कुछ करते ही रहना उनका स्वभाव बन गया था। जेल में भी उनका समय लिखने-पढ़ने में ही व्यतीत होता था।"

-नत्थू सिंह पथिक
विजय सिंह पथिक के भतीजे

"जांति-पांति के पचड़े से वे सदैव कोसों दूर रहे। उनके स्वर्गवास तक किसी को उनकी जाति का पता नहीं था। गुर्जरों में जाते तो लोग समझते कि ये गुर्जर हैं। जाट अपनी जाति के बतलाते और राजपूत उनकी वेशभूषा और नाम से उनके राजपूत होने का दावा करते। मथुरा में लोग उन्हें पंजाबी, सिख और कोई पंडित समझते थे।"

-जानकी देवी पथिक
विजय सिंह पथिक की धर्मपत्नी

मैने बिजौलिया का नाम जब मैं पढ़ता था, तभी से सुना था तथा आज भी इनका नाम भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा हुआ है। उसका श्रेय बिजौलिया की दो महान विभूतियों- श्री विजय सिंह पथिक और श्री माणिक्यलाल वर्मा-को है, जिन्होंने देश की खातिर जेल की यातनाऐं सहीं और तन, मन, धन से जनता की सेवा की।

- डॉ० कालूलाल श्रीमाली
भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मंत्री

उदयपुर के बिजौलिया ठिकाने के जनसमूह में वन्देमातरम के उदबोधक तथा राजनैतिक चेतना के प्रथम निर्भीक प्रचारक स्वर्गीय भाई विजय सिंह पथिक थे। पथिक जी निश्चय ही बड़े कर्मठ और लगन के व्यक्ति थे।

- बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
प्रसिद्ध साहित्यकार

मेवाड़ में जिस तरह हल्दीघाटी के नाम के साथ प्रताप का नाम जुड़ा हुआ है, उसी तरह पथिक जी के नाम के साथ बिजौलिया अपने आप याद आ जाता है। हल्दीघाटी में जाते ही चेतक घोड़े की टापें सुनाई देती हैं, उसी तरह बिजौलिया क्षेत्र में जाने पर पथिक जी की गूंज सुनाई देती है।

- कुम्भाराम आर्य
राजस्थान के प्रमुख राजनेता

सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता युद्ध से लेकर 1947 तक स्वतंत्रता यज्ञ में अपनी निरंतर आहुति देने वाला पथिक परिवार सा भारत में बिरला ही कोई परिवार होगा। विजय सिंह पथिक ने बापू के चम्पारण के दो वर्ष पूर्व तथा सरदार पटेल के बारडोली के 12 वर्ष पूर्व 1915 में बिजौलिया सत्याग्रह का श्रीगणेश किया था।

- हरिप्रकाश अग्रवाल
वयोवृद्ध लेखक

पथिक जी जिस समय बिजौलिया आये, उनकी वेशभूषा पूरी सैनिक थी। कमर में तलवार, शिकारी कोट की दोनों बड़ी-बड़ी जेबों में करीब 150 कारतूस व 12 कारतूस वाले रिवाल्वर से वे सज्जित थे। सिर पर शेखावटी ढंग की पाग तथा धोती पहने हुए थे। चेहरा दाढ़ी से रोबीला था और पंचकेशी से युक्त सिर, एक ऋषि का रुप सा था।

- साधु सीताराम दास
पथिक जी के प्रमुख साथी

पथिक जी का स्तर महात्मा गांधी और पं० जवाहरलाल नेहरु के मुकाबले का था।

- काका त्रिलोकचन्द
सम्पादक, दैनिक 'हिन्दू', अजमेर

मैं दावे के साथ कहता हूँ कि गांधी जी के आश्रम से पथिक जी का राजस्थान सेवा संघ कई दृष्टियों से बहुत आगे था।

- रामनारायण चौधरी
वयोवृद्ध गांधीवादी नेता

स्वर्गीय विजय सिंह पथिक राजस्थान के देशी राज्य प्रजा स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रमुख सेनानी थे। उनकी सेवाओं के लिए राजस्थानियों की पीढ़ियां सदैव ऋणी एवं कृतज्ञ रहेंगी।।

- बी०एन० जोशी
पूर्व मंत्री, राजस्थान

पथिक जी के कार्य इतने महान हैं कि हम उनकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

- दुर्गाप्रसाद चौधरी
सम्पादक, दैनिक 'नवज्योति'

यदि पथिक जी पूंजीवादी बोझ से लदा गांधीवादी चोला पहन लेते तो गांधी जी को सत्ता के बंटवारे में डॉ० राजेन्द्र बाबू के लिए किसी नये पद की खोज करनी पड़ती।

- जगदीश प्रसाद दीपक
सम्पादक 'मीरा'

जिस व्यक्ति के नाम मात्र से ही ब्रिटिश सरकार की छत्रछाया में चलने वाले देशी रज़वाड़े थर-थर कांपते हों और जिस व्यक्ति के सिर के लिए इनाम की घोषणा कर रखी हो, उस व्यक्ति के कार्यों की कल्पना कीजिए।

- मोहन राज भंडारी
प्रमुख पत्रकार

श्री विजय सिंह पथिक राजस्थान के लाखों शोषित-पीड़ित और पद्दलित किसानों के त्राता के रुप में सदैव स्मरण किये जायेंगे। वे अब से लगभग एक सदी पूर्व इस पिछड़े प्रदेश की जन जागृति के जनक रहे हैं।

- युगल किशोर चतुर्वेदी
पत्रकार, नेता व स्वतंत्रता सेनानी

राजस्थान में यदि मैं किसी से प्रभावित हुआ तो श्री विजय सिंह पथिक से। पथिक जैसे देशभक्त का अन्तिम समय जिस प्रकार व्यतीत हुआ, वह कांग्रेस शासन के लिए शर्म की बात है।

- स्वामी कुमारानन्द
राजस्थान के प्रमुख कम्युनिस्ट नेता

सन्दर्भ व टिप्पणी

21. विजय सिंह पथिक स्मृति ग्रन्थ - पृ०सं० 150
22. विजय सिंह पथिक स्मृति ग्रन्थ - पृ०सं० 20
23. विजय सिंह पथिक स्मृति ग्रन्थ - पृ०सं० 213
24. विजय सिंह पथिक स्मृति ग्रन्थ - पृ०सं० 214
25. बिजौलिया किसान आंदोलन का इतिहास पृ०सं० 59

(सभी विजय सिंह पथिक स्मृति ग्रन्थ से)

पथिक जी द्वारा रचित साहित्य

पथिक जी की बहुत सी रचनाएं हैं, जिनमें से कुछ प्रकाशित हो सकी हैं और कुछ अप्रकाशित हैं, जिनकी सूची निम्न प्रकार है-

प्रकाशित :-

1- जेल में दिया ऐतिहासिक बयान
2- चुनाव-पद्धतियां और जनसत्ता
3- पथिक प्रमोद (कहानी संग्रह)
4- पथिक विनोद (कविता-संग्रह)
5- प्रहलाद विजय (खण्डकाव्य)
6- सुखिया-सुरेश (नाटक)
7- What are Indian States

अप्रकाशित (मौलिक)

1- अजयमेरू (ऐतिहासिक उपन्यास)
2- आलोचना
3- इतिहास का अध्ययन
4- उलट-पुलट (हास्य-व्यंग्य)
5- कल्पना-कल्लोल (गद्यकाव्य) भाग एक एवं दो
6- गणपति (ऐतिहासिक नाटक)
7- गणराज्य पद्धति
8- गाँव के हकीमजी (चिकित्सा)
9- जीवन-संस्मरण (आत्मकथा)
10- नारी जाति का इतिहास
11- पथिकजी के जेल के पत्र
12- पथिक निबन्धावली (भाग एक एवं दो)
13- पथिक प्रमोद (कहानी-संग्रह) (दूसरा भाग)
14- पथिक विनोद (कविता संग्रह) (भाग दो एवं तीन)
15- बिकरा भाई (राजनैतिक उपन्यास)
16- भारतीय राजनीति के तत्व
17- राजस्थान की मूल संस्कृति
18- रामलाल (नाटक)
19- वांछनीय जीवन (निबन्ध)
20- वेदों में विश्व-इतिहास
21- वैज्ञानिक वेदांत-दर्शन
22- स्वराज (राजनैतिक सिद्धान्त)
23- पथिक जी के पत्र

अनुवाद (अप्रकाशित)

1- अध्यापक और अभिभावक (टाल्सटाय की प्रसिद्ध पुस्तक)
2- गरीबों का स्वराज (प्रिन्स क्रोपाटकिन की प्रसिद्ध पुस्तक 'कौ क्वेस्ट आव ब्रेड')

सम्पादित पत्र

1- राजस्थान केसरी
2- नवीन राजस्थान
3- तरुण राजस्थान
4- राजस्थान संदेश
5- नव-संदेश
6- ऊपरमाल को डंको

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

1. विजय सिंह पथिक स्मृति ग्रन्थ, सम्पादक : डॉ० विष्णु पंकज, प्रकाशक : हंसा प्रकाशन, जयपुर।
2. बिजौलिया किसान आंदोलन का इतिहास, लेखक : शंकर सहाय सक्सेना एवं डॉ० पद्मजा शर्मा, प्रकाशक : राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।
3. स्वाधीनता संग्राम में राजस्थान की आहुतियाँ, लेखक : डॉ० कन्हैयालाल राजपुरोहित, प्रकाशक : साइन्टिफिक पब्लिशर्स, जोधपुर।
4. राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी, सम्पादक : सुमनेश जोशी, प्रकाशक : ग्रन्थागार, जयपुर।
5. विजय सिंह पथिक, लेखक : डॉ० पदम सिंह वर्मा, प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, भारत सरकार।
6. क्रान्तिकारी विजय सिंह पथिक, लेखक : डॉ० भोपाल सिंह, हरिद्वार।
7. हिन्दी पत्रों के सम्पादक, लेखक : श्री वी०एस० ठाकुर, आगरा।
8. राजस्थान के किसान एवं आदिवासी आंदोलन, लेखक : डॉ० बी०के० शर्मा, जयपुर।
9. बीसवीं सदी का राजस्थान, लेखक : रामनारायण चौधरी, अजमेर।
10. क्रांतिवीर विजय सिंह पथिक, लेखक : डॉ० भोपाल सिंह, पी०एच-डी०, प्रकाशक : सम्राट मिहिर भोज गुर्जर विकास सोसाइटी, लण्ढौरा, हरिद्वार।
11. भारत मां के अमर सपूत, लेखक : स्वामी वासुदेवानन्द तीर्थ।
12. क्रांतिवीर विजय सिंह पथिक, प्रकाशक : निदेशक, जनसम्पर्क निद्रेशालय, जयपुर।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

साहित्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
महाकवि अमीर खुसरो	अनु. अब्दुल सत्तार	100.00
कबीर	डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	40.00
भुवनेश्वरः व्यक्तित्व एवं कृतित्व	सम्पा. राजकुमार शर्मा	90.00
सुब्रहम्ण्य भारती	सम्पा. डॉ. एन. सुन्दरम	165.00
साहित्य मनीषी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	डॉ. रामचन्द्र तिवारी	60.00
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जीवन चरित्र	राधा कृष्ण दास	48.00
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन	सम्पा स्व. श्री कमलापति मिश्र	125.00
हरिश्चन्द्र	बाबू शिवनन्दन सहाय	100.00
बंशीधर शुक्ल रचनावली	सम्पा. डॉ. श्यामसुन्दर मधुप	378.00
आचार्य किशोरीदास वाजपेई	सम्पा. डॉ. मंजु लता तिवारी	200.00
गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'	सम्पा. डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'	165.00
गोस्वामी तुलसीदास	डॉ. रामचन्द्र तिवारी	50.00
रामचंद्र शुक्ल	सम्पा. प्रो. सत्यदेव मिश्र	15.00
राष्ट्रकवि सोहन लाल द्विवेदी	डॉ. राष्ट्रबन्धु	40.00
चंदवरदाई	डॉ. सुमन राजे	50.00
कविवर सुमित्रानन्दन पंत	डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्त	52.00
कथाकार यशपाल	डॉ. मनमोहन सहगल	70.00
सुभद्रा कुमारी चौहान	डॉ. प्रतीक मिश्र	55.00
भगवती चरण वर्मा : एक व्यक्तित्व-चित्र	ज्ञान चन्द्र जैन	70.00
अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	डॉ. कन्हैया सिंह	43.00
मैथिलीशरण गुप्त	डॉ. प्रभाकर शुक्ल	50.00
आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी	डॉ. रामेन्द्र पाण्डेय	50.00
सेनापति	डॉ. अनन्त राम मिश्र 'अनन्त'	75.00
गुरु नानक देव	डॉ. मनमोहन सहगल	90.00
लक्ष्मीकान्त वर्मा	डॉ. राजकुमार शर्मा	140.00

सम्पर्क सूत्र
निदेशक
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान
राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन
६, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ - २२६००१

ISBN : 978-93-82175-74-2

मूल्य रु. 77=00